अनुक्रम

पहला प्रवचन

न भोग, न त्याग--वरन रूपांतरण

मेरे प्रिय आत्मन्!

मैं अत्यंत आनंदित हूं अपने हृदय की थोड़ी सी बात आपसे कर पाऊंगा इसलिए। आनंद जितना बंट जाए, उतना बढ़ जाता है। जो मुझे दिखाई पड़ता है जीवन जैसा सुंदर, जैसा संगीत से पूर्ण, जैसा आह्लादकारी, जैसी धन्यता मुझे उसमें दिखाई पड़ती है, हृदय में कामना उठती है आपको भी जीवन वैसा दिखाई पड़े। और स्मरण रहे, जीवन वैसा ही हो जाता है जैसी देखने की हमारे पास दृष्टि होती है। वही जीवन नरक हो सकता है, वही स्वर्ग भी; वही बंधन हो सकता है और वही मुक्ति भी। लेकिन इधर कई हजार वर्षों से जीवन को बदलने की नहीं बल्कि जीवन से भागने की शिक्षा दी गई।

समझाया गया है कि जीवन को छोड़ दो, और समझाया गया है कि जीवन से ही जो मुक्त हो जाए वही परम धन्य है। यह बात एकदम घातक, एकदम विष-भरी है। इस शिक्षा का यह दुष्परिणाम हुआ, इस संस्कार का यह दुष्परिणाम हुआ कि जो जीवन बदला जा सकता था, जो दृष्टि इसी जीवन में परमात्मा को अनुभव कर सकती थी, उसके पैदा होने की सारी संभावना समाप्त हो गई। जो लोग जीवन से भागना शुरू कर देते हैं, वे जीवन को बदलने में असमर्थ हो जाते हैं। और वे लोग भी जीवन को बदलने में असमर्थ हो जाते हैं जो जीवन को भोगना शुरू कर देते हैं। जीवन को भोगने वाला भोग में भटक जाता है, जीवन से भागने वाला भागने में; और जीवन को जानने से दोनों वंचित रह जाते हैं।

दो ही प्रकार के लोग हैं, दो ही प्रकार की शिक्षाएं हैं, दो ही प्रकार की दृष्टियां हैं। और उन दोनों दृष्टियों के तनाव में, उन दोनों दृष्टियों के टेंशन में मनुष्य का निरंतर, निरंतर जीवन क्षीण होता गया, अंधकारपूर्ण होता गया।

एक छोटी सी एक कहानी मैं कहूं और फिर जो मुझे कहना है वह आपसे कहने चलूं।

एक पागलखाने में कुछ लोग पागलों का अध्ययन करने और उन्हें समझने गए। मित्रों का एक मंडल वहां गया। उन्होंने एक-एक पागल के पास जाकर उसके जीवन को, उसके जीवन में घटी दुर्घटना को समझने की कोशिश की। एक पागल के पास वे बहुत देर तक रुके रहे। और न केवल उस पागल के जीवन को उन्होंने समझा, वरन उनके हृदय को भी उसके जीवन ने छुआ। उस पागलखाने के चिकित्सक ने उस पागल के संबंध में बहुत सी बातें उन्हें बताईं। वह अत्यंत दया-योग्य पागल था। उसकी आंखों से आंसू बह रहे थे और उसके ओंठ कुछ कहना चाहते थे उसके लिए फड़क रहे थे, लेकिन कह नहीं पाते थे। और उसके हाथ में एक बहुत बड़ी मनुष्य के ही बराबर एक स्त्री की पुतली थी, एक प्रतिमा थी, एक गुड़िया थी। और उस गुड़िया को वह हृदय से लगाए हुए था। उन लोगों ने पूछा चिकित्सक को कि इस पागल को क्या हो गया है? तो सारी घटना बताई गई। समझाया गया। वह जब युवा था, कोई बीस साल पहले की बात है, तब वह किसी युवती को प्रेम करता था, इतना प्रेम किया था उसने कि उसके अभाव में उससे अलग होकर वह या तो पागल होता या आत्मघात कर लेता। किसी भांति उसके घर के लोगों ने उसे आत्मघात करने से बचा लिया, तो वह पागल हो गया था। और तब से इन बीस वर्षों में उस युवती की गुड़िया को बना कर उससे ही प्रेम किया करता था, उससे ही बातें किया करता था।

वे सभी जो इस कथा को सुने दुखी हो आए और उनकी आंखें भी गीली हो गईं। उन्होंने पूछा कि उस लड़की का फिर क्या हुआ? चिकित्सक ने बताया, उसने दूसरे व्यक्ति से विवाह कर लिया। और तब वे आगे बढ़े और दूसरी कोठरी के समक्ष पहुंचे। और उस चिकित्सक ने कहाः यही वह दूसरा आदमी है। वे सब हैरान हो गए, उन्होंने पूछाः इसे क्या हुआ? चिकित्सक ने कहाः यह उस लड़की से विवाह करने के कारण पागल हो गया।

इसने बहुत कोशिश की, इसने मरने की कोशिश की, लेकिन लोगों ने मरने न दिया। और तब यह पागल हो गया। वे दोनों ही पागल हो गए। जिसने युवती को प्रेम किया और न पा सका और वह भी जिसने उसे पा लिया।

यह कहानी बहुत अजीब मालूम होगी। लेकिन अधिक लोगों के जीवन में यही कहानी घटित होती है। और एक-दो छोटी घटनाएं कहूंगा ताकि मेरी बात का जो प्रारंभ बिंदु है वह आपके ख्याल में आ जाए।

एक कारागृह में एक ही सुबह दो व्यक्तियों को फांसी होने वाली थी। उनमें एक बहुत बड़ा पापी था, जिसको हम पापी कहते हैं। जिसने जीवन में जो भी बुरा था सब किया था और जीवन के सब भांति के कड़वे अनुभव लिए थे। और दूसरा एक पुरोहित था, एक पादरी था, एक संन्यासी था, वह राजद्रोह में पकड़ा गया था, उसने कोई पाप कभी नहीं किया। जहां-जहां पाप की छाया थी, वह वहीं-वहीं से दूर रहा। उसने जीवन को अत्यंत पवित्रता में और प्रार्थना में व्यतीत किया था। उन दोनों को फांसी होने वाली थी। जो उस कारागृह का पुरोहित था, मरने के पहले लोगों को परमात्मा की याद दिलाने वाला, वह आया। वह पहली कोठरी में गया और उसने उस पापी को कहा कि क्षमा मांगो परमात्मा से, दुखी होओ, प्रार्थना करो और पश्चात्ताप करो। उस पापी की आंखों से आंसू बहने लगे, वह रोने लगा, और उसने कहा कि हे परमात्मा! क्षमा करो उन पापों के लिए जो मैंने किए और मुझे बल दे कि अगले जन्म में उन पुण्यों को जिन्हें मैं करना चाहता था, उनके करने की शक्ति और संकल्प पा सकूं। वह दुखी था, जो पाप उसने किए उनके लिए, और दुखी था उन पुण्यों के लिए जो वह नहीं कर पाया।

उसको प्रार्थना करवा कर पुरोहित दूसरी कोठरी में गया। वहां एक दूसरा पुरोहित बंद था। उसकी आंखों से भी आंसू बहते थे, पादरी ने उसे कहा कि क्षमा मांगो जीवन में तुमने जो भूलें की हैं और पश्चात्ताप करो। उस पुरोहित ने कहाः मेरे मित्र, जरूर मैं पश्चात्ताप कर रहा हूं, लेकिन उन पापों के लिए नहीं जो मैंने किए, बल्कि उन पापों के लिए जो मैं नहीं कर पाया। मैं दुखी हो रहा हूं उन पापों के लिए जो मैं नहीं कर पाया, और कर सकता था। मृत्यु के इस क्षण में वे सब पाप मुझे याद आ रहे हैं जो मैं कर लेता, हो सकता था उनमें आनंद होता। हो सकता है मैंने जीवन व्यर्थ गंवाया। और उसने कहा कि मेरे मित्र, तुम अभी युवा हो, और तुम भी उसी मार्ग पर हो जिस पर मैं गया, मैं तुमसे प्रार्थना करूंगा कि मैं तो मर रहा हूं, लेकिन तुम पाप करने से मत चूकना। क्योंकि जो पाप करने से चूक जाता है बाद में पछताता है।

वह युवा पादरी बहुत हैरान हुआ! पास में ही कोठरी में एक पापी पछता रहा था उन पापों के लिए जो उसने किए, और पास में ही एक पुरोहित पछता रहा था उन पापों के लिए जो वह नहीं कर पाया।

जीवन दोनों ही तरह से उलझ जाता है। ये दो जीवन के रूप करीब-करीब हर मनुष्य के सामने विकल्प होकर खड़े हो जाते हैं। एक रास्ता है जीवन में वासनाओं को भोगने का, उनमें डूब जाने का। एक रास्ता है उनसे भाग जाने का, उनके प्रति पीठ मोड़ लेने का। और ये दो ही बातें निरंतर हमारे समक्ष हैं।

मैं आपसे निवेदन करूंगा, दोनों ही बातें जीवन को नष्ट कर देती हैं। संसार भी नष्ट कर देता है और संन्यास भी। भोग भी नष्ट कर देता है और त्याग भी। क्या कोई और दृष्टि भी हो सकती है जीवन के प्रति जागने की? क्या कोई ओर मार्ग भी हो सकता है? उसकी मैं चर्चा करूंगा, लेकिन इसके पहले कि मैं उसकी चर्चा करूं यह कह देना, यह समझ लेना जरूरी होगा कि ये दोनों मार्ग क्यों जीवन को नष्ट कर देते हैं? भोग का मार्ग क्यों जीवन को नष्ट कर देता है? जीवन भर इच्छाओं और वासनाओं के पीछे दौड़ कर जीवन क्यों समाप्त हो जाता है? हाथ क्यों रिक्त रह जाते हैं और खाली? कोई उपलब्धि, कोई प्राप्ति, प्राणों का कहीं पहुंचना क्यों नहीं हो पाता?

नहीं हो पाता यह तो हम जानते हैं, अपने अनुभव से भी, औरों के अनुभव से भी। मनुष्य-जाति के हजारों वर्ष के अनुभव यही कहते हैं--नहीं पहुंचना हो पाता। वासना में जितना दौड़ते हैं, जितना डूबते हैं, मन और रिक्त और खाली होता चला जाता है। मन भरता नहीं, मन पूर्णता को नहीं पाता। मन और भी खाली और रिक्त

हो जाता है। और रिक्त मन ही दुख है। रिक्त मन आकांक्षाओं और प्यासों और अभीप्साओं से भरा हुआ मन। लेकिन जिसकी पूर्ति कुछ भी न हो पाई हो, ऐसा मन, ऐसा मन दुख और संताप है। लेकिन कुछ भी करें, कुछ भी पा लें, कैसे भी दौड़ें, जीवन में कोई भी उपलब्धि बन जाए, फिर भी यह मन तो भरता नहीं। आज तक किसी का भी भरा नहीं।

एक सुबह एक राजा के महल के द्वार पर बड़ी भीड़ थी, भीड़ बढ़ती ही गई, सुबह से सांझ हो गई। धीरे-धीरे पूरी राजधानी ही राजमहल के द्वार पर इकट्ठी हो गई। एक बड़ी उपद्रव की बात हो गई थी, एक बड़ी उलझन की बात हो गई थी। सारा गांव उत्सुक हो गया था। राजा बड़ी मुसीबत में पड़ गया था। सुबह-सुबह एक भिक्षु ने उसके दरवाजे पर भिक्षा मांगी थी। राजा ने उससे कहा था कि तुम पहले याचक हो, जो भी मांगोगे मैं दे दूंगा। भिक्षुक ने कहाः एक बार सोच लें, क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि न दे पाएं। ऐसे मैं कोई बड़ी मांग लेकर नहीं आया हूं, देखते हैं मेरा भिक्षापात्र बहुत छोटा है, इससे ज्यादा मागूंगा भी तो रखूंगा कहां? इसलिए घबड़ाएं न, मागूंगा तो छोटी बात, लेकिन हो सकता है उसे भरने में राजा भी कमजोर पड़ जाए, छोटा पड़ जाए। इसलिए सोच लें और फिर वचन दें।

निश्चित ही राजा को चुनौती लगी होगी। निश्चित ही राजा के मन को चोट लगी होगी। उसने कहा कि तुम जो कहोगे पूरा करूंगा, मांगो। उस भिक्षु ने कहाः मेरा यह जो भिक्षा का पात्र है इसे यदि पूरा भर दें, तो मैं तृप्त हो जाऊं और चला जाऊं।

राजा ने कहाः यह कौन बड़ी बात है, यह कौन कठिनाई की बात है एक राजा के लिए, एक सम्राट के लिए। किस चीज से तुम चाहते हो कि मैं इसे भर दूं? उस भिक्षु ने कहा कि यह मेरी कोई मांग नहीं, बस मेरा पात्र भर जाए, इतना काफी है। राजा ने कहाः छोटा सा पात्र है। अपने खजांचियों को कहा कि जाओ हीरे-जवाहरातों से भर दो। उसके पास तिजोरियां थीं अकूत, उसके पास धन था जो कभी गिना नहीं जा सका, उसके पास दौलत थी जिसका कोई हिसाब न था, उसका राज्य था जिसकी कोई सीमाएं न थीं। सोचा कि क्या, भिक्षापात्र ही जब कोई भिक्षु लेकर आ गया है और पूरे भरने की मांग की है तो क्या अनाज के दानों से भरूं। तो उसने भर दिया पूरा भिक्षापात्र, भरने की कोशिश की। उसी कोशिश में सांझ हो गई थी। उसकी सारी तिजोरियां खाली होती गईं। वह भिक्षापात्र बड़ा अजीब था, वह भरता ही न था। धीरे-धीरे उसके अकूत खजाने खाली हो गए। और संध्या की जब उदासी उतरने लगी नगर पर तब राजा के महल में भी घनघोर अंधकार छा गया। वह भिक्षापात्र भरता ही न था। सुबह से सांझ हो गई थी। जितनी संपत्ति राजा के पास थी वह डाल चुका था। और वह भिक्षु खड़ा था। और राजधानी के लोग इकट्ठे होते चले गए थे। अजीब थी बात। भिक्षुक बड़ा साबित हो रहा था सम्राट से।

हमेशा ही ऐसा हुआ है। भिक्षुक हमेशा सम्राट से बड़ा है। सम्राट चुक जाए लेकिन भिक्षुक का मन कभी भरता नहीं। वह भिक्षु का पात्र भी नहीं भरता था। आखिर राजा ने कहाः क्षमा कर दो, भूल हो गई। भिक्षुक ने कहाः पहले ही कह देते तो इतनी देर मुझे क्यों खड़ा रहने पड़ता? इतना ही तो कहना था कि नहीं भर सकूंगा, मैं चला जाता। राजा ने कहाः लेकिन जाते समय इतना बता जाओ कि यह पात्र कैसा है? यह कैसा मैजिक, यह कैसा जादू का पात्र है, यह भरता क्यों नहीं? उस भिक्षु ने कहाः इसमें कुछ रहस्य नहीं, एक मनुष्य की खोपड़ी से इसे मैंने बनाया है। इसमें कोई जादू नहीं। मरघट से खोपड़ी खोद लाया हूं, उसी से इसे बनाया है। अब इसे दुनिया में कोई भी भर नहीं सकता है।

मनुष्य की खोपड़ी में जो बैठा है मन, वह कब भरा जा सका? कौन सा मनुष्य का मन भरा जा सका है? कब भरा जा सका है? और क्या पता है कि मन बिल्कुल भिक्षुक है? मन एकदम मांगता ही चला जाता है, मांगता ही चला जाता है, मन के मांगने का कोई अंत नहीं आता। कितना ही मिल जाए तो भी मांग समाप्त नहीं होती है।

एक फकीर अकबर से मिलने गया था। उसके मित्रों ने उससे कहा था कि अकबर से कहो, इतना तुम्हें प्रेम करता है तो हमारे गांव में एक छोटा सा स्कूल, एक मदरसा खोल दे। तो वह फकीर गया। जब वह पहुंचा तो अकबर सुबह की नमाज पढ़ रहा था। वह फकीर पीछे खड़ा हो गया मस्जिद में। नमाज पूरी हुई, अकबर ने दोनों हाथ उठाए और कहा कि हे परमात्मा! मेरे राज्य को और बड़ा कर, मेरे खजानों को बड़ा कर, मेरे धन को बढ़ा, मेरी दौलत को बढ़ा। वह फकीर हैरान हो गया। उसने कल्पना न की थी कि अकबर भी मांगता होगा। वह वापस लौटने लगा सीढ़ियों से, अकबर उठा तो उसने देखा, उसने चिल्लाया कि कैसे आए और कैसे वापस लौट चले? उस फकीर ने कहाः मैंने सोचा मैं बादशाह से मिलने जाता हूं, पाया यहां भी एक फकीर बैठा है। और जो खुद ही मांगता है उसको और मैं मांग कर लज्जित करूं तो शोभा नहीं देता। तो तुम जिससे मांगते थे अगर मांगना ही होगा तो हम भी उसी से मांग लेंगे। लेकिन अब तुमको बीच में लेने का कोई भी कारण नहीं है।

अकबर भी मांगता है। सम्राट भी मांगते हैं। इसलिए दुनिया में दो तरह के भिखारी होते हैं, एक जिनके पास कुछ नहीं होता और मांगते हैं और एक जिनके पास सब होता है फिर भी मांगते हैं। लेकिन भिखारी होने में कोई फर्क नहीं होता है।

यह हो सकता है कि बहुत कुछ आपके पास हो, इससे इस भ्रम में न पड़ जाएं कि आपके भीतर का भिखमंगा मर गया। भिखमंगा मरता ही नहीं। भीतर का भिखारी समाप्त ही नहीं होता। मन मांगे चला जाता है। क्यों? क्यों मांगे चला जाता है? और जो भी मिलता है उससे पूर्ति क्यों नहीं होती? क्या है बात? इतना इकट्ठा कर लेते हैं फिर भी मन का खालीपन जहां के तहां बना रहता है सुरक्षित, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

आपके पास जरूर कुछ न कुछ होगा, सबके पास कुछ न कुछ है। क्या उस कुछ से आपके मन का कोई कोना भी भरा? कोई कोना, छोटा-मोटा कोना भी? अगर मन का कोई छोटा-मोटा कोना भी भर गया हो तो आशा बंध सकती है कि कभी पूरा मन भी भर जाएगा। लेकिन अगर मन का कोई कोना भी नहीं भरता, जो भी हम इकट्ठा कर लेते हैं उससे मन की इंच भर जमीन भी नहीं भरती, तो फिर हम कितना ही इकट्ठा कर लें उससे मन नहीं भर सकेगा।

जरूर कोई बात है जहां हम इकट्ठा करते हैं और जहां मन की रिक्तता है, यह कोई दो तल पर होगी। इन दोनों के तल अलग होंगे। इसलिए हम एक तरफ इकट्ठा भी करते चले जाते हैं, दूसरी तरफ मन खाली का खाली भी रहा आता है। शायद हम जो भी इकट्ठा करते हैं वह मन में पहुंचता ही नहीं। इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं हो सकता। जो हम इकट्ठा करते हैं वह मन में पहुंचता ही नहीं। पहुंचेगा भी कैसे? जो भी हम इकट्ठा करते हैं वह बाहर है और मन भीतर है। और जो भी हम इकट्ठा करते हैं वह बाहर है और मन भीतर है। भीतर और बाहर का संबंध ही क्या? भीतर और बाहर का जोड़ ही क्या? ऐसे ही है जैसे मेरा घर खाली हो और मैं पड़ोस के घर में सामान इकट्ठा करता रहूं, तो मेरा घर इससे कैसे भर जाएगा? हां, पड़ोस का घर भर जाएगा, लेकिन मैं तो खाली रहूंगा।

मन है खाली। जो खाली है वह भीतर है और जो भराव की सारी चेष्टा है वह बाहर है। बाहर और भीतर का कहीं कोई मेल नहीं होता। बाहर चीजें इकट्ठी होती चली जाती हैं, भीतर दरिद्रता सुरक्षित बनी रहती है। इसीलिए तो कितना ही धन हो, दरिद्रता नहीं मिटती, पावर्टी नहीं मिटती, भिखमंगापन नहीं मिटता। किसी का नहीं मिटा--सिकंदर का नहीं मिट सकता, नेपोलियन का नहीं मिट सकता, स्टैलिन या हिटलर का नहीं मिट सकता, हैनरी फोर्ड या कारनेगी का, या किसी और का नहीं मिट सकता, कितना ही धन हो।

कारनेगी मरता था तब उसके पास चार अरब रुपये थे, लेकिन मरते वक्त बहुत उदास था। और किसी मित्र ने पूछाः कि इतने उदास हो, तुम तो प्रसन्नता से मरो कम से कम, तुमने तो बहुत इकट्ठा किया। कारनेगी ने कहाः सब योजनाएं असफल हो गईं, मेरे इरादे दस अरब इकट्ठा करने के थे। और केवल चार ही मैं इकट्ठा कर पाया। केवल चार! और दस की योजना थी। और इस भूल में न रहें कि दस इकट्ठे हो जाते तो योजना वहीं टिक

जाती, योजना आगे चली जाती। योजना बढ़ती है क्षितिज की भांति। आकाश को देखते हैं न रोज जमीन को छूते हुए, दिखता है पास में ही आकाश जमीन को छू रहा है, और फिर बढ़ते चले जाएं, बढ़ते चले जाएं, आप बढ़ते हैं आकाश भी बढ़ता चला जाता है। अब तक कोई आदमी पहुंच नहीं सका उस जगह जहां आकाश जमीन को छूता हो। असल में आकाश जमीन को कहीं छूता ही नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। और दिखाई इसलिए पड़ता है कि आंखें हमारी कमजोर हैं। अगर आंखें हमारी और तेज हों और दूर-भेदी हों और पारदर्शी हों और असीम तक खोज पाती हों, तो फिर आकाश कहीं छूता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा। आंख की सीमा ही आकाश के छूने की सीमा बन जाती है। ऐसे ही जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं--वासना में, भोग में, इच्छा में, वह जो डिजायर, वह जो वासना है, आगे बढ़ती जाती है। और लगता है कि थोड़ी दूर और आगे चलें तो मिलना हो जाएगा। लेकिन कितने ही आगे बढ़ जाएं फासला उतना ही होता है जितना था।

अलाइस नाम की लड़की का, छोटी सी लड़की का जीवन पढ़ा होगा। परियों की कथाएं हैं अलाइस की तो। झूठी कहानियां हैं। लेकिन दुनिया में कुछ ऐसे अदभुत लोग हुए हैं कि उन्होंने झूठी कहानियों से ऐसे सच कह दिए जो कि सत्य के नाम पर लिखे बड़े से बड़े ग्रंथों में भी उपलब्ध नहीं है। और सत्य के नाम से लिखे ग्रंथों पर तो बहुत झगड़े हो गए हैं। लेकिन छोटी-छोटी कहानियों में कुछ लोग कह गए हैं जिन पर कोई झगड़ा नहीं हुआ। और इसलिए आज भी उन कहानियों में छिपी हुई सच्चाइयां बड़ी, बड़ी अदभुत रूप से ताजी और जिंदा हैं। अभी उन पर कोई खून-खच्चर नहीं हुआ। अभी उन पर कोई मस्जिद और मंदिर नहीं बने। अभी पंडित और पुरोहित ने लड़ाई नहीं लड़ी। वे दूर, ताजी और स्वच्छ और जीवित हैं। ऐसी ही अलाइस की एक कहानी है।

वह स्वर्ग में पहुंच गई परियों के देश में। और वहां जमीन से गई परियों के देश तक तो जरूर थक गई होगी। कौन नहीं थक जाता है? इतनी लंबी यात्रा, छोटी सी लड़की, वह बहुत थक गई। उसे भूख और प्यास लग आई। जैसे ही उसने देखा जाकर, तो सूरज ऊग रहा था, स्वर्ग में सुबह हो रही थी। और परियों की रानी एक वृक्ष के नीचे खड़ी थी। और उसके हाथ में मिठाइयों का थाल था। और वह रानी उसे बुला रही थी कि आओ। वह पास ही एक दरख्त की छाया में खड़ी दिखाई पड़ रही थी। अलाइस ने दौड़ना शुरू किया, वह दौड़ने लगी तेजी से, भूख थी तेज, प्यास थी गहरी, दौड़ना था जरूरी। थकी थी फिर भी दौड़ी क्योंकि नहीं तो फिर प्यास और भूख कैसे मिटेगी? प्रलोभन था तीव्र, सामने ही वह रानी बुलाती थी। वह दौड़ती गई, दौड़ती गई, दौड़ती गई, दोपहर हो गई, सूरज सिर पर आ गया। वह घबड़ा कर खड़ी हो गई और उसने चिल्ला कर पूछा कि क्या मामला है? सुबह से दोपहर हो गई दौड़ते-दौड़ते, मेरे और तुम्हारे बीच का फासला उतना का उतना है?

वह रानी अब भी खड़ी है और बुलाए जा रही है। और उस रानी ने कहाः यह ज्यादा सोच-विचार मत करो, क्योंकि जो सोच-विचार करता है उसका दौड़ना बंद हो जाता है। तुम तो दौड़ो और आओ, कोशिश करो, जरूर पहुंच जाओगी। वह फिर भागने लगी, और सांझ हो गई और सूरज ढलने लगा। और वह अलाइस थक कर गिर पड़ी और उसने देखा रानी अब भी खड़ी है। लेकिन फासला उतना का उतना है। उसने घबड़ा कर, चिल्ला कर पूछा, ज्यादा फासला नहीं होगा, क्योंकि बातचीत हो सकती थी, उसने चिल्ला कर पूछा कि यह कैसी दुनिया है तुम्हारी? सुबह से सांझ हो गई दौड़ते-दौड़ते, यहां फासले समाप्त नहीं होते। ये कैसे रास्ते हैं तुम्हारी दुनिया के कि कहीं पहुंचाते नहीं? उस रानी ने कहाः पागल, किसी दुनिया में कोई रास्ता कहीं नहीं पहुंचाता है। और तुम्हारी दुनिया में भी दौड़ना होता है, फासले समाप्त नहीं होते हैं। जैसी तुम्हारी दुनिया है वैसी यह दुनिया है। इस दुनिया में भी कोई फासला समाप्त नहीं होता है। दौड़ें कितना ही, जहां जन्म के समय पाया था अतृप्त और खाली, मरने के समय वहीं पाएंगे अतृप्त और खाली। मरने के और जन्म के बिंदु में कोई फर्क नहीं होता, चित्त वहीं के वहीं होता है।

तो बाकी जीवन की दौड़ कहां विलीन हो जाती है? विलीन हो जाती है एक ऐसे काम में जो बिल्कुल एब्सर्ड है, जो बिल्कुल मूढ़तापूर्ण है। मन है भीतर, दौड़ चलती बाहर। रिक्तता है भीतर, एंप्टीनेस है भीतर,

भरते हैं बाहर। सीधा अंधापन है। फिर क्या, क्या करें? भीतर कैसे भरें? भीतर कैसे रिक्तता से मुक्ति हो जाए और भीतर एक फुलफिलमेंट, एक पूर्णता, एक परितृप्ति, एक भराव उपलब्ध हो कि भीतर कोई कोना, कोई कोना भी रोता हुआ और प्यासा और भूखा न रह जाए। भीतर सब तृप्त हो जाए, यह कैसे हो? इस ख्याल में कि बाहर की कोई कोशिश सफल नहीं होती, कुछ लोग बाहर से भागना शुरू कर देते हैं। स्वभावतः सीधा गणित यही कहता है कि अगर बाहर की दौड़ से कुछ नहीं होता तो भागो बाहर से। लेकिन आपको क्या पता है, बाहर से भागेंगे तो भी भीतर नहीं पहुंच सकते। बाहर से भागना भी बाहर ही भागना है। कोई आदमी धन इकट्ठा करने को दौड़ता हो, दूसरा आदमी धन को त्याग करने के पीछे लग जाए, दोनों हालत में दोनों व्यक्ति बाहर ही होते हैं--धन को इकट्ठा करने वाला भी, धन को छोड़ने वाला भी। क्योंकि धन बाहर है। और दोनों की दृष्टि बाहर होती है, तथाकथित संसारी बाहर होता है, संन्यासी भी बाहर होता है। संन्यासी उलटा खड़ा हुआ है संसारी से, लेकिन भीतर नहीं है।

एक आदमी अपने मकान के बाहर सीधा खड़ा हुआ है, दूसरा आदमी शीर्षासन कर रहा है मकान के बाहर ही खड़ा हुआ। लेकिन इससे वह कोई भीतर नहीं पहुंच जाता। उलटा खड़ा हुआ आदमी भी बाहर ही होता है, सीधा खड़ा हुआ आदमी भी बाहर होता है, भीतर इससे कोई पहुंचता नहीं। संन्यास, तथाकथित संन्यास एक प्रतिक्रिया है, एक रिएक्शन है। बाहर सुख नहीं मिलता, बाहर की खोज से कुछ होता नहीं, इसलिए बाहर को छोड़ने के लिए दौड़ने लगो। लेकिन दौड़ोगे कहां? ठीक उलटी दौड़ शुरू हो जाएगी। कोई स्त्री के पीछे भागता है, कोई स्त्री से दूर भागता है। लेकिन जो स्त्री के पीछे भागता है वह भी स्त्री का चिंतन करता है और जो स्त्री से दूर भागता है वह भी स्त्री का चिंतन करता है। दोनों के चित्त स्त्री में अटके होते हैं। और स्त्री हो तो पुरुष में अटके होते हैं। धन में अटके होते हैं, यश में अटके होते हैं। और जो इस दुनिया के यश और धन से भागने लगता है, इससे उलटा जाने लगता है, इससे दूर हटने लगता है, पलायनवादी हो जाता है, एस्केप करने लगता है, उसका चित्त किसी परलोक में सुखों की कामना करने लगता है। वह सोचने लगता है कि यहां मैंने स्त्रियां छोड़ीं तो स्वर्ग में अप्सराएं मिलनी चाहिए, नहीं तो स्वर्गों की कल्पनाएं कौन करे? और वहां अप्सराओं की कल्पनाएं कौन करे? और यहां मैंने जो कुछ छोड़ा वह मुझे वहां कई गुना ज्यादा होकर मिलना चाहिए। इसलिए उसकी कल्पनाएं, उसकी वासनाएं किसी दूरगामी लोक पर थिर हो जाती हैं। लेकिन इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।

स्वर्ग की खोज भी बाहर है, परलोक की खोज भी बाहर है। और इसलिए न संसारी का मन भरता है और न संन्यासी का मन भरता है। दोनों ही रिक्त और खाली रह जाते हैं। फिर संसारी जिस-जिस बात को भोगता है, निरंतर खोजता है जिन-जिन वासनाओं को, जितनी उन वासनाओं की पटरी पर उसकी दौड़ होती है, उतनी ही वासनाएं और गहरी और प्रगाढ़ हो जाती हैं। जिन-जिन रास्तों से हम बार-बार गुजरते हैं वे रास्ते मजबूत हो जाते हैं। वे रास्ते हमारे जीवन के सहज मार्ग हो जाते हैं। फिर उन्हीं-उन्हीं रास्तों पर हमें दौड़ना पड़ता है। फिर उन्हीं-उन्हीं रास्तों पर हम रोज-रोज पुनुरुक्त होते हैं, रोज उन्हीं को रिपीट करते हैं, वे और गहरे होते चले जाते हैं। धीरे-धीरे जीवन जड़ लीकों पर दौड़ती हुई मशीनों की भांति हो जाता है।

विलियम जेम्स एक होटल में बैठा हुआ था एक बार अमरीका की। सामने से एक, एक रिटायर्ड, सेना से अवकाश प्राप्त एक वृद्ध जनरल निकल रहा था। वह अपने सिर पर कुछ सामान लिए हुए था। विलियम जेम्स अपने मित्र से बातें करता था, बातें करते-करते उसे मजाक सूझी और उसने जोर से चिल्ला कर कहाः अटेंशन! वह जो बाहर सैनिक जा रहा था अपने सिर पर बोझ लिए, वह एकदम से अटेंशन खड़ा हो गया। उसका बोझ नीचे गिर पड़ा। दो साल हो चुके थे उसे नौकरी छोड़े हुए। लेकिन दिमाग ने एक लीक पकड़ ली थी। अटेंशन सुनते ही लीक काम कर गई, जड़ की तरह वह खड़ा हो गया, सामान उसका नीचे गिर पड़ा। उसमें बोतलें थी

दवा की वे टूट गईं, उसमें कुछ और सामान था वह फूट गया। उसने आकर जेम्स को कहा कि यह कैसा मजाक करते हैं? जेम्स ने कहा कि मैं तो 'अटेंशन' कह रहा था, आपका इससे क्या संबंध? उस आदमी ने कहाः जीवन भर इस एक शब्द के ही केंद्र पर मैं घूमा, यद्यपि मुक्त हो गया मिलिटरी से, लेकिन चित्त ने लीकें बना लीं, रास्ते बना लिए, उन्हीं पर जड़ होकर घूमता हूं। मुझे तो अगर मैं मर भी जाऊं और कोई कह दे अटेंशन, तो मैं अटेंशन खड़ा हो जाऊंगा। उसने कहा कि मैं अगर मर भी जाऊं और कोई जोर से कह दे अटेंशन, तो मैं एकदम अटेंशन खड़ा हो जाऊंगा। मेरे बस के ही बाहर है मामला।

चित्त जिस चीज को पुनरुक्त करता है, उसी-उसी चीज में गहरे से गहरे उसकी जकड़ होती चली जाती है, वासनाओं के पीछे चलने से वासनाएं मिटती नहीं वासनाएं और गहरी और तीव्र और घनीभूत हो जाती हैं। इसीलिए बच्चे से कहीं बूढ़ा ज्यादा वासनायुक्त होता है। बच्चे में वासनाएं शुरू होती हैं, बूढ़े में जड़ हो गई होती हैं। इसीलिए तो बच्चे में एक भोलापन है जो बूढ़े में विलीन हो जाता है। उसके चित्त की सब ताजगी विलीन हो जाती हैं, सब चीजें जड़ हो जाती हैं। कुछ बातों को उसने निरंतर पुनुरुक्त किया, रोज-रोज दोहराया, वे ही रास्ते मजबूत हो गए, वह जड़ यंत्र की भांति हो गया। वासना जड़ करती है। लेकिन वासना से भागने वाला भी जड़ हो जाता है। वासना से भागने वाला भी जड़ हो जाता है। जड़ इसलिए हो जाता है कि उसके चित्त का केंद्र भी वासना है। वह भी चित्त के केंद्र पर वासना को ही छोड़ने में लगा है। वह भी वासना से भयभीत है। उसने भी वासना को जाना और समझा नहीं। अगर जान लेता और समझ लेता तो मुक्त हो जाता। उसने भी वासना को देखा और पहचाना नहीं। वह भी वासना से भयभीत होकर भाग रहा है। वह भी एक छाया से डरा हुआ है। और रोज-रोज भागता है, और स्मरण रखें, जिससे हम भयभीत हो जाते हैं वह हमें और भयभीत कराने लगता है। और जिससे हम डर जाते हैं वह हमें और परेशान करने लगता है। हमारे कमजोर क्षणों में वह लौट-लौट कर आने लगता है। और जिससे हम डर जाते हैं वह हमारे सपनों में प्रविष्ट हो जाता है, वह हमारे गहरे अचेतन में प्रविष्ट हो जाता है, वह हमारी कामनाओं में रस लेने लगता है। इसलिए साधु जो काम जागने में नहीं कर पाते वे नींद में और सपनों में कर लेते हैं। इसलिए तो साधु नींद से डरता है, घबड़ाता है। क्योंकि दिन भर जिसको रोका है वह नींद में सपना बन कर सताने लगता है, परेशान करने लगता है।

साधुओं और संन्यासियों की कथाएं सुनी होंगी, जिनमें अप्सराएं आकर उनको परेशान करती हैं। क्या पागलपन की बात है? कोई भगवान ने कोई मिनिस्ट्री खोल रखी है कहीं कि वह आकर और लोगों को सताएं और अप्सराएं आएं और साधुओं के सामने नग्न नाचें? यह कोई धंधा खोल रखा है भगवान ने कहीं? लेकिन साधुओं की ही दमित वासनाएं खुद को निरंतर किसी वासना को जबरदस्ती दबाया हो, तो वही वासना किसी कमजोर क्षण में साकार खड़ी हो जाती है सामने। कोई और कहीं से आने वाला नहीं है। लेकिन जिस चीज से डर कर हमने आंखें बंद की हैं, स्मरण रखें, वह आखें बंद करने से पीछा नहीं छोड़ देगी, वह और भीतर प्रविष्ट हो जाएगी, और भीतर प्रविष्ट हो जाएगी। आप जितनी आंख बंद करते चले जाएंगे वह उतनी और प्राणों में धंसती चली जाएगी। और एक दिन आप पाएंगे कि वासना ही आपकी आत्मा बन गई। जो जितना दमन करेगा वासना का वासना उसके भीतर प्रविष्ट होती चली जाएगी।

एक कथा मैंने सुनी है। कथा मैंने सुनी है कि इंद्र ने, वही कथा है, वही उसी मिनिस्ट्री की जिसकी मैंने बात की। वह इंद्र के हाथ में है कई हजारों सालों से। इंद्र को यही धंधा सौंपा हुआ है कि वह साधु-संन्यासियों को अप्सराएं भेज-भेज कर डिगाता रहे। पता नहीं यह इंद्र भी कोई पुराने जमाने का पॉलिटिशियन है, कौन है, क्या है, क्या मामला है? इसको इस गंदे काम को करने में कैसे रस आ रहा है? और एक-दो दिन में समाप्त भी नहीं हो रहा, वह चल रहा है हजारों साल से। तीन मुनियों के बाबत इंद्र को खबर लगी कि वे बहुत गहरी साधना में प्रविष्ट हो गए हैं। उसने उर्वशी को कहा कि तीनों के सामने जाकर नग्न नृत्य कर। उर्वशी गई, उसने सात दिन तक तो तैयारी की। स्वभाविक, साधारण स्त्रियां भी खूब तैयारी करती हैं, उर्वशी तो अप्सरा थी, सात दिन लग

गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। और इसलिए कोई यह न कहे कि आज-कल की स्त्रियां ही बिगड़ गई हैं और बहुत तैयारी कर रही हैं, धर्मग्रंथों में लिखा हुआ है कि सात दिन तक उर्वशी ने तैयारी की, मेकअप किया।

वह गई। वह जाकर तीनों साधुओं के समक्ष नाचने लगी। वह अदभुत रूपसी होकर आई थी। वह नाचती गई, लेकिन थोड़ी देर में ही परेशान हो गई। क्योंकि वे तीनों एकटक उसे देखते रहे, लेकिन न तो कोई प्रभावित हुआ और न कोई डरा और भागा। दो में से कोई भी एक काम हो जाता, तो उर्वशी सफल हो जाती। न तो उनमें से कोई प्रभावित हुआ और लोलुप हुआ, न उनमें से कोई डरा और भागा। दो में से कोई भी, काम हो जाता तो उर्वशी सफल हो जाती। वे तीनों बैठे रहे और देखते रहे। उर्वशी थक गई, ऊब गई, परेशान हो गई। सब भांति उसने उपाय किए, लेकिन वे तीनों बैठे थे, और बैठे थे और देखते रहे। आखिर उसने अपने ऊपर के वस्त्र निकाल कर अलग कर दिए, उसके ऊपर के वस्त्रों के फेंकते ही एक मुनि चिल्लाया कि बस अब हद हो गई, अब बरदाश्त के बाहर है। दूसरे दो मुनियों ने कहा, आंखें बंद कर लो। क्योंकि उर्वशी के नृत्य पर हमारा क्या बस? अपनी आंखों पर हमारा काबू है। वह नाचती है उसे नाचने दो, अगर तुम घबड़ा गए और डर गए तो आंखें बंद कर लो। उस मुनी ने आंखें बंद कर लीं। आंखें बंद करते ही उसे दिखाई पड़ा, उर्वशी इतनी सुंदर कभी भी नहीं थी जितनी बंद आंखों में दिखाई पड़ने लगी। जिसने भी आंखें बंद की हैं उसको यह सदा दिखाई पड़ा है। बंद आंख जिंदगी में जो है उसे बड़ा, बड़ा रूपक, बड़ा मोहक आकृति दे देती है, बड़ी सम्मोहक, बड़ी हिप्नोटाइजिंग ताकत दे देती है।

कभी भी किसी चीज को आंख बंद करके देखें तो पता चल जाएगा। भयभीत होकर आंख बंद कर लें किसी चीज पर, और फिर पाएंगे, जो बाहर था उससे बहुत ज्यादा सुंदर भीतर है। सपने बहुत सुंदर हैं यथार्थ से, खुली आंख यथार्थ देखती है, बंद आंख सपने देखने लगती है। और सपने तो बहुत मनमोहक हैं।

उसने आंख बंद की वह घबड़ाया, उसने पीठ फेर ली, वह और घबड़ाया, वह उठ कर भागने लगा और उसकी कामना की उर्वशी उसके पीछे नृत्य करने लगी। उसकी आंखों में भीतर डोलने लगी, उसके प्राणों में उसके घुंघरू सुनाई पड़ने लगे। लेकिन दो अभी बैठे थे और देखे जाते थे। उर्वशी ने नीचे के वस्त्र भी निकाल कर फेंक दिए, वह पूरी नग्न हो गई। दूसरा मुनि चिल्लाया, अब हद हो गई, अब बरदाश्त के बाहर है। तीसरे मुनि ने कहाः तो फिर आंखें बंद कर लो, क्योंकि उर्वशी पर हमारा क्या वश? अपनी आंखें हैं, जो नहीं देखना चाहता बंद कर ले। दूसरे मुनि ने आंखें बंद कर लीं। जो पहले मुनि के साथ हुआ था वही उसके भी साथ हुआ। वह भागने लगा और उर्वशी उसका पीछा करने लगी।

अभी तीसरा मुनि आंखें खोले बैठा था। अब उर्वशी मुश्किल में पड़ गई। इस तीसरे व्यक्ति के साथ अब और कुछ उघाड़ने को न रहा। वह पूरी नग्न हो गई थी, उसने सब वस्त्र फेंक दिए थे। अब कुछ भी न था जो ढंका हुआ हो। अब बड़ी कठिनाई हो गई। अब बड़ी मुश्किल हो गई, अब बड़ी बेचैनी हो गई। और वह मुनि भी अजीब था, वह बोला, कि कुछ और उघाड़ने को हो तुम उघाड़ लो; क्योंकि हमने तो आंख न बंद करने का तय किया है। और मैं देख रहा हूं कि जिन्होंने आंखें बंद कीं वे भागे चले जा रहे हैं और उनके माथों पर पसीना है। तो मैंने तो आंखें न बंद करने का तय किया। अब तुम कृपा करो और अपनी चमड़ी को भी निकाल कर अलग कर दो, ताकि मैं और गहरे देख सकूं। और अगर वहां भी कोई पर्दा हो तो उसको भी उघाड़ कर फेंक दो ताकि मैं और गहरे देख सकूं। मैं आज तुम्हें तुम्हारी पूर्णता और पूरी नग्नता में ही देख लेना चाहता हूं।

अब और कुछ उघाड़ने को नहीं था, चमड़ी के बाद फिर कुछ भी उघाड़ने को नहीं है। वहां तो जो कुछ है वह सब छिपाने को है। वह उर्वशी भागने लगी और वह मुनि उर्वशी का पीछा करने लगा। वह उर्वशी घबड़ाई कि कहीं वह चमड़ा न उखाड़ ले। वह भागती हुई इंद्र के पास पहुंची, उसने कहा कि बचाओ, एक अदभुत आदमी से मिलना हो गया है। वह कह रहा है कि चमड़ा उखाड़ कर भी अंदर कुछ हो तो हम उसे देख लेना चाहते हैं। ऐसे आदमी से कभी मिलना नहीं हुआ। यह आदमी तो बड़ा अजीब है। इसके दो साथी तो आंख बंद किए और भाग गए, लेकिन यह आंखें खोले ही बैठा रहा।

मैं आपसे निवेदन करता हूं, न तो वासना में निरंतर घूम कर कोई कभी वासना से मुक्त होता है और तृप्ति को पाता है। और न वासना से भाग कर कभी कोई, कभी कोई किसी भी अर्थ में वासना से मुक्त हो पाता है। लेकिन जो व्यक्ति भी आंखें खोल कर जीवन के सत्यों को देखने की तैयारी करता है, आंखें खोल कर, जीवन धीरे-धीरे उसके सामने अपना सारा सम्मोहक रूप खो देता है। जो व्यक्ति भी आंखें खोल कर जीवन को देखने का साहस करता है उस व्यक्ति के समक्ष जीवन का सारा रहस्य उदघाटित हो जाता है। उस व्यक्ति के समक्ष जीवन में कुछ पाने जैसा नहीं रह जाता। उस व्यक्ति के समक्ष जीवन में कोई दौड़ नहीं रह जाती और न कोई भागना। जहां दौड़ नहीं है वहां कोई भागना भी नहीं है। जहां कोई आकर्षण नहीं है वहां कोई विकर्षण भी नहीं है। और जहां कोई राग नहीं है वहां कोई वैराग्य भी नहीं है।

आंखें खोल कर अगर कोई जीवन को देखने में समर्थ हो जाए, तो एक तीसरी, एक अत्यंत ही भिन्न दिशा का उदघाटन होता है। और उसके अतिरिक्त कभी कोई जीवन के दुख से और जीवन की पीड़ा से न मुक्त हुआ है और न हो सकता है। आंखें खोल कर देखना।

दो मार्ग मैंने कहेः एक राग का मार्ग है, एक विराग्य का। तीसरे मार्ग को मैं कहता हूंः वीतराग का। आंखें खोल कर देखना, जीवन मिला है, जीवन में एक अदभुत खोज है, एक अदभुत लोक है, जिसमें हम जागें और खोजें और देखें और स्मरण रखें। जिस चीज को भी पूरा-पूरा देख लेंगे उससे ही मुक्त हो जाएंगे। जहां हम पूरा नहीं देख पाते वहीं रस सरकता रह जाता है। और जहां-जहां निषेध हो वहां-वहां रस और भी पैदा हो जाता है।

यहां इस दरवाजे पर हम लिख कर टांग दें कि भीतर झांकना मना है, फिर यहां से निकलने वाला कोई भी इतना शक्तिशाली नहीं हो सकता कि बिना भीतर झांके की आकांक्षा लिए निकल जाए। बहुत कम लोग ही होंगे जो यहां से बिना झांके निकल जाएं। और निकल भी जाएंगे तो पछताएंगे। पीछे लौट कर देखने की मन में आकांक्षा जगी रहेगी।

मन सहज ही उत्सुक हो जाता है जहां निषेध है। इसलिए जिसने भी अपने मन के ऊपर निषेध किया वह अपने हाथ से एक उपद्रव में पड़ जाएगा और पीड़ा भोगेगा। निषेध न करें। लेकिन इसका क्या यह अर्थ है कि भोग करें? क्या इसका यह अर्थ है कि जीवन जो कुछ भी दिखाए उसी में डूब जाएं और जीवन जो आकर्षण दे उन्हीं में विलीन हो जाएं? नहीं, आकर्षण है ही इसलिए कि बहुत गहरे निषेध है। अगर चित्त पर कोई निषेध न हो, तो आप हैरान हो जाएंगे, चित्त पर कोई आकर्षण भी नहीं रह जाता है। और अगर फिर भी मालूम पड़े कोई आकर्षण, तो उस आकर्षण से भागे न, उस आकर्षण से पीठ न मोड़ें। क्योंकि जिसने पीठ मोड़ी, आकर्षण उसका पीछा करेगा। अगर कोई आकर्षण दिखाई पड़े, तो फिर पूरी सजगता को लेकर उस आकर्षण को जानने ही चले जाएं। पूरी खुली आंख से उस आकर्षण के पर्दों को गिरने दें और उसके एक-एक वस्त्र को गिरने दें, और खोजें वहां तक जहां तक कि हड्डी और मांस न आ जाएं और जहां सारा आकर्षण विलीन न हो जाए। अगर प्रेमी और खोजने वाली आंखें हों, तो दुनिया में कोई आकर्षण ऐसा नहीं है जो राख सिद्ध न हो। लेकिन हम आंख बंद कर लेते हैं, या तो हम मोह में आंख बंद कर लेते हैं या हम द्वेष में आंख बंद कर लेते हैं। या तो हम आंख बंद कर लेते हैं तीव्र आकर्षण में और या हम आंख बंद कर लेते हैं तीव्र विकर्षण में। दोनों हालतों में आंखें बंद हो जाती हैं। और बंद आंखें जीवन में सारे दुख का कारण हैं।

कैसे आंख खोली जा सके? जीवन के सत्यों के प्रति कैसे आंख खोली जा सके?

पहली बात, पहला सूत्र हमेशा स्मरण रखें, अगर दूसरे की शिक्षाओं को पकड़ कर आपने जीवन में खोज की, आपकी आंख कभी नहीं खुल सकेगी। आपकी आंख कभी नहीं खुल सकेगी। क्योंकि जीवन के तथ्यों को आप किन्हीं सिद्धांतों की आड़ से देखना शुरू कर देंगे और तभी निष्पक्ष न हो पाएंगे। अगर आप क्रोध को देखने गए; हजारों साल से सिखाया गया है क्रोध बुरा है। अगर आप सेक्स को देखने गए; सिखाया गया है सेक्स बुरा है। अगर इस बुरेपन के भाव को लेकर गए, तो आप देख न पाएंगे। क्योंकि देखने के लिए अत्यंत निष्पक्ष,

अनप्रिज्युडिस्ड, बिल्कुल तटस्थ मन चाहिए। और यह मन तो पक्षपात से भरा हो गया। और जहां पक्षपात है वहां देखना असंभव है।

अगर मैं आपके पास आऊं यह सोच कर कि ये बहुत बुरे आदमी हैं, तो मैं करीब-करीब यह निष्कर्ष लेकर लौट जाऊंगा कि आप बुरे आदमी थे। और एक दूसरा आदमी आए यह निष्कर्ष लेकर पहले से कि आप बहुत भले आदमी हैं, वह करीब-करीब निष्कर्ष लेकर लौट जाएगा कि आप बहुत भले आदमी हैं। वह जो खोजने आया था उसे खोज लेगा।

जिंदगी बहुत, बहुत जटिल है, उसमें सब कुछ है--बुरा और भला, उसमें अंधेरा है और उजाला है, उसमें छाया है और उसमें प्रकाश है। और कोई तथ्य ऐसा नहीं है जिसमें कि अंधेरा पक्ष न हो और प्रकाश से भरा पक्ष न हो। तो जो व्यक्ति जो पक्ष लेकर जाएगा वह उस तथ्य में से वही बात निकाल लेगा, लेकिन पूरे सत्य से वह कभी परिचित नहीं हो पाएगा। पूरे सत्य से वही परिचित हो सकता है जो अत्यंत निष्पक्ष मन लेकर जीवन के तथ्यों का निरीक्षण करता है। तो क्रोध का निरीक्षण करें, लड़ें नहीं, भोग न करें, क्रोध आ जाए तो क्रोध में डूब न जाएं, और क्रोध आ जाए तो राम-राम, राम-राम जप कर उससे बचने की कोशिश न करें। क्रोध आ जाए तो उसका निरीक्षण करें, स्वागत करें, जीवन ने एक तथ्य भेजा है, उसको जानें और पहचानें।

एक फकीर था, मरते वक्त उससे किसी ने पूछा कि तुम्हारे जीवन में सबसे बड़ी, सबसे बड़ी कौन सी घटना घटी? उस फकीर ने कहाः मेरे पिता मर रहे थे, और उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया, तब मैं तेरह वर्ष का था, और उन्होंने मेरे कान में कहा, कि देख बेटे, मेरे पास तुझे देने को कुछ भी नहीं है, कोई संपदा मैंने इकट्ठी नहीं की, क्योंकि मैंने पाया कोई भी संपदा वस्तुतः संपदा नहीं है, इसलिए मेरे पास तुझे देने को कुछ भी नहीं है, लेकिन फिर भी एक बात जिसके द्वारा मैं धीरे-धीरे फकीर रहते हुए भी बादशाह हो गया, एक बात जिसके द्वारा मेरे पास कुछ भी नहीं था फिर भी सब कुछ था, एक बात कि जिससे मेरे लिए और मेरे पीछे, और मुझे देख कर बादशाहों को भी ईर्ष्या जगने लगी, वह बात मैं तुझसे कह दूं। शायद तुझे स्मरण रह जाए, शायद कभी तेरे वक्त-बेवक्त काम आ जाए, तो उस युवक ने उनसे पूछा कि कौन सी बात? तो उसके पिता ने मरते हुए पिता ने कहा था कि तब जब भी तेरे जीवन में कोई तथ्य आए--क्रोध, कामवासना, कोई भी बात तेरे जीवन में आए, तू उसे मेहमान की तरह जान कर स्वागत करना, अतिथि की तरह जान कर स्वागत करना। न तो एकदम उसके प्रभाव में डूब कर खुद को भूल जाना और न उससे आंखें चुराना। स्वागत करना घर आए अतिथि का अत्यंत प्रेम से, और निरीक्षण करना बहुत गहरा, क्या-क्या उसमें छिपा है।

उस युवक ने जीवन भर इसका प्रयोग किया। मरते समय वह भी अपने मित्रों से कह सका कि अगर मुझे यह सूत्र न मिला होता तो मेरा जीवन पानी में खींची गई लकीरों की भांति व्यर्थ हो जाता। लेकिन मैंने जीवन के एक-एक तथ्य का अत्यंत धैर्यपूर्वक स्वागत किया, निरीक्षण किया, ऑब्जर्वेशन किया, देखा, और मैं हैरान हो गया, मैंने पाया कि उन सभी तथ्यों के निरीक्षण में, निरीक्षण करते ही करते उन तथ्यों में जो भी अशुभ था वह विलीन हो गया और जो शुभ था वह शेष रह गया। क्रोध के भीतर भी कुछ है, क्रोध के भीतर भी कुछ है जो बच जाए। क्रोध के भीतर भी कुछ है जो बच ही जाना चाहिए। जिस व्यक्ति में क्रोध न हो उसमें कोई तेज ही नहीं होता, उसमें कोई तेजस्विता नहीं होती, उसके भीतर कोई पोटेंस नहीं होती। वह नपुंसक होता है, इंपोटेंट होता है। उसके भीतर कोई बल नहीं होता, उसके भतीर कोई ओज नहीं होता। क्रोध में भी कुछ है। लेकिन जिसके भीतर क्रोध होता है, हम देखते हैं, वह तो नरक हो गया। हम देखते हैं, वह तो आग में जल रहा है और तड़फ रहा है। आग से घर में दीया भी जलाया जा सकता है और घर में आग भी लगाई जा सकती है। इससे आग न तो बुरी हो जाती कि उससे आग लग जाती है और घर जल जाता है, लेकिन उससे दीया भी जलाया जा सकता है और अंधेरे में प्रकाश भी किया जा सकता है। आग में कुछ है जो बचाया जा सकता है। आग में कुछ है जो छोड़ा जा सकता है। ठीक क्रोध में भी कुछ है, सेक्स में भी कुछ है। जिस व्यक्ति में सेक्स ही न हो, जिस व्यक्ति के भीतर

कामवासना न हो, उस व्यक्ति से कुछ भी क्रिएट नहीं होता, कोई सृजन नहीं होता उससे। अब तक दुनिया में उन लोगों ने जिनके भीतर कोई काम की वासना नहीं थी बचपन से, उनके भीतर कोई सृजन पैदा नहीं हुआ। न उनसे गीत पैदा हुआ, न उनसे एक संगीत की लहर जन्मी, न उन्होंने एक चित्र बनाया, न उन्होंने एक गांव बसाया, न उन्होंने बगीचे लगाए और फूल पैदा किए। उनसे कुछ भी नहीं हुआ।

जीवन में जो भी सृजनशीलता है, जो भी क्रिएटिविटी है, वह सेक्स का हिस्सा है। लेकिन हम तो देखते हैं, एक आदमी सेक्स के जीवन में पड़ जाता है तो उसका जीवन सिवाय दुख और पीड़ा के और ग्लानि के और शक्तिहीनता के कहीं भी नहीं जाता। जरूर सेक्स के भीतर जो भी अशुभ है वही पकड़ लिया जाता है और जो शुभ है वह छूट जाता है।

शुभ को खोजने के लिए बहुत पैनी आंख चाहिए। और स्मरण रखें, एक छोटे से बीज को प्रकृति छिपाती है, तो सख्त खोल में छिपा देती है, सख्त खोल ऊपर चढ़ा देती है, भीतर बीज को छिपा देती है। अगर हम सख्त खोल से ही डर कर वापस लौट आएं, तो फिर बीज कभी बोया नहीं जाएगा। लेकिन हम जानते हैं सख्त खोल बीज की दुश्मन नहीं है, बीज की सुरक्षा है। बीज को डालें खेत में, जमीन में, सख्त खोल गल जाएगी और टूट जाएगी और अंकुर निकल आएंगे। उन कोमल अंकुरों की सुरक्षा के लिए सख्त खोल थी। मनुष्य के जीवन में जिसे भी हम बुरा कहते हैं, मैं बुरा नहीं कहता, मैं कहता हूं, वह सख्त खोल की तरह है उसके भीतर बड़े कोमल अंकुर छिपे हुए हैं। जो आदमी क्रोधी होता है अगर किसी भी दिन क्रोध की शक्ति से पूरी तरह परिचित हो जाए वही क्षमावान हो जाता है। क्रोध के भीतर क्षमा छिपी है। और जिस आदमी के जीवन में क्रोध नहीं है उसके जीवन में क्षमा कभी नहीं होगी।

क्या आपको पता है जिस आदमी के भीतर बहुत ज्यादा काम की वासना होती है वही व्यक्ति सचमुच में कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो पाता है, अन्यथा दूसरा व्यक्ति नहीं। सेक्स की शक्ति ही, काम की शक्ति ही ब्रह्मचर्य का ओज बन जाती है। जैसे किसी घर के बाहर हम खाद को इकट्ठा कर दें, गंदगी को इकट्ठा कर दें, तो बास, दुर्गंध फैलना शुरू हो जाएगी। वहां जीना और रहना कठिन हो जाए, वहां श्वास लेना मुश्किल हो जाए। लेकिन जो जानता है वह उस खाद को बगिया में डाल देता है। और बीज बो देता है। और बीजों से पौधे निकलते हैं और फूल आते हैं। और उन फूलों में जो सुगंध है वह उसी खाद से खिंच कर निकलती है। वह उसी का ट्रांसफार्मेशन है, वह उसी का रूपांतरण है। खाद के दुश्मन न बन जाएं, खाद के उपयोग करने वाले बनें। खाद के गुलाम न बन जाएं, खाद के मालिक बनें। जीवन में जो भी वासनाएं हैं वे सारी की सारी वासनाएं खाद बन सकती हैं आत्मा के फूलों के लिए। लेकिन जो उनसे लड़ता है वह कैसे उन्हें खाद बना पाएगा? और जो उनमें डूब जाता है वह दुर्गंध में डूब जाता है। और जो उनसे भागता है वह सुगंध से वंचित रह जाता है।

समझ लें, फिर से दोहराता हूं, जो खाद में डूब जाता है वह दुर्गंध में डूब जाता है। और जो खाद से भागने लगता है वह सुगंध से वंचित रह जाता है। जो खाद का उपयोग करता है और खाद को रूपांतरित करता है, वह दुर्गंध से मुक्त होता है और सुगंध को उपलब्ध होता है। जीवन का भी सूत्र यही है। जीवन में जो भी है, जो भी है, परमात्मा के जीवन में वह जो भी मिला है प्रकृति से वह सब छिपा हुआ, छिपा हुआ सौभाग्य है। उससे घबड़ाएं न, उससे भागें न, उसमें डूब भी न जाएं। फिर क्या करें? उसका निरीक्षण करें, उसके साक्षी बनें, उसका ऑब्जर्वेशन करें, उसे देखें, उसे पहचानें, उसे सब तरफ से खोजें और उससे परिचित हों, उसमें कुछ भी अपरिचित न रह जाए। जिस दिन क्रोध को कोई पूरा जान लेता है, क्रोध से मुक्त हो जाता है। लेकिन क्रोध का जो तेज था, जो वीर्य था, क्रोध का जो ओज था, वह उसमें बच रहता है, वह उसमें बच रहता है। वह निर्वीर्य नहीं हो जाता। जो काम को, सेक्स को पूरा समझ लेता है; सब तरफ से उसे खोजता है, देखता है, निरीक्षण करता है, बारीक से बारीक उसके पहलू में प्रवेश करता है, सूक्ष्म से सूक्ष्म उसको पहचानता है, वह सेक्स से मुक्त

हो जाता है। उसी के भीतर ब्रह्मचर्य का जन्म होता है, उसी के भीतर वह सारी शक्ति दिव्य ऊर्जा में बदल जाती है।

तो मैं आपसे निवेदन करूं, तीसरा है मार्गः न तो भोग का, न दमन का; वरन रूपांतरण का, टांसफार्मेशन का। और रूपांतरण होता है निरीक्षण से, ऑब्जर्वेशन से। क्या आपको ख्याल है, क्या आपको पता है कि जैसे ही हम चीजों को देखना शुरू करते हैं, एक बुनियादी अंतर शुरू हो जाता है। जीवन में एक बुनियादी अंतर शुरू हो जाता है। क्या यह संभव है कि एक मकान में आप हों और आपको दिखाई पड़ता हो कि सामने दरवाजा है, फिर भी क्या आप दीवाल से निकल सकेंगे? नहीं निकल सकेंगे। दरवाजा जिसे दिखाई पड़ता है वह दीवाल से कैसे निकलेगा? वह तो दरवाजे से निकल जाता है, दीवाल से नहीं निकलता। अगर कोई दीवाल से टकराता हो, तो जानना चाहिए उसकी आंख खुली हुई नहीं हैं, इसलिए टकराता है। जीवन में जो भी अनीति है, वह आंख के बंद होने के कारण है। दुनिया में कोई बुरा आदमी नहीं है, दुनिया में कोई भला आदमी नहीं है। दुनिया में ऐसे लोग हैं जिनकी आंखें बंद हैं और ऐसे लोग हैं जिनकी आंखें खुली हैं। खुली आंखों वाले लोग हैं और बंद आंखों वाले लोग हैं। आंख जिसकी भी खुल जाए उससे बुराई असंभव हो जाती है। आंख जिसकी खुल जाए वह दरवाजे से निकलता है, दीवालों से नहीं टकराता। हम टकराते हैं, इसका एक ही अर्थ है कि आंख बंद है। और बंद आंख वाला भागने लगे तो कोई हल होने वाला है क्या? आंख खुलेगी तो हल होगा, भागने से कोई हल होने वाला नहीं है। अभी इस दीवाल से टकराते थे, भागेंगे तो दूसरी दीवाल से टकराएंगे, द्वार कैसे मिल जाएगा? भागने वाला आदमी द्वार कैसे पा सकता है? अभी एक दीवाल से टकराता था, भागेगा दूसरी दीवाल से टकराएगा। लेकिन द्वार खोजने के लिए न भागने की जरूरत है, न अंधें की भांति टकराने की जरूरत है, आंख खोलने की जरूरत है। जीवन के प्रति आंख खोलने की जरूरत है। और हमारी आंखें सच में ही करीब-करीब बंद हैं। हम जीवन के किसी तथ्य को न तो देखते हैं, न खोजते हैं। कभी आपने अपने क्रोध को खोजा?

हिंदुस्तान से एक फकीर कोई डेढ हजार वर्ष हुए चीन गया, वहां का एक बहुत बड़ा बादशाह उससे मिलने आया। और उस बादशाह ने कहाः मैंने सुना है कि तुम किसी का भी मन शांत कर देते हो। उस फकीर ने कहा कि बिल्कुल, यही हमारा धंधा है, लोगों का मन शांत कर देना। तुम्हें मन शांत करवाना है? वह बादशाह हैरान हुआ। बहुत फकीरों से मिला था, वे शांति की बातें समझाते थे, कहते थे, ऐसा करो, वैसा करो, तो शांत हो जाओगे। यह अजीब आदमी है उसने कहा कि तुम्हें मन शांत करवाना है? अगर करवाना है तो सुबह चार बजे आ जाओ, जरा जल्दी आ जाना, कोई दूसरे लोग न आ जाएं। तो मैं तुम्हारा पहले ही शांत कर दूंगा। तो वह राजा संदिग्ध हुआ मन में कि ऐसी कोई आसान बात है क्या किसी का मन शांत कर देना? यह कोई मशीन है क्या कोई ठीक कर दे? लेकिन फिर भी उसने सोचा कि एक मौका तो देना चाहिए इस फकीर को भी, दिखता तो पागल है। क्योंकि इसकी बात में कोई समझ तो मालूम होती नहीं। अब तक किसी ने यह कहा ही नहीं। वह सीढ़ियां उतरने लगा उस मंदिर की जिसमें फकीर ठहरा था, बीच में फकीर ने चिल्ला कर कहा कि सुनो, कल आओ तो ख्याल से अपने अशांत मन को साथ ले आना, नहीं तो हम शांत क्या करेंगे? राजा और हैरान हुआ, कि जब मैं आऊंगा तो मन तो मेरे साथ ही होगा, यह कहने की क्या जरूरत थी? यह आदमी पागल मालूम होता है।

दूसरे दिन चार बजे क्या तीन बजे ही राजा पहुंच गया। कौन नहीं अपने अशांत मन को शांत करवा लेना चाहेगा? आप भी होते आप भी पहुंच गए होते। और मुफ्त में हो रहा था। कुछ काम भी वह करवा नहीं रहा था--कुछ धन नहीं ले रहा था, कुछ मांग नहीं रहा था, कुछ छीन नहीं रहा था। वह पहुंचा। उस फकीर ने पूछा कि ले आए अपना मन? उस राजा ने कहाः यह भी क्या हैरानी की बात करते हैं, मैं आया तो मन भी आ गया।

उसने कहाः इतना आसान मामला नहीं है कि तुम यहां आ गए तो तुम्हारा मन भी आ गया हो, यह जरूरी नहीं है। आदमी कहीं होता है मन उसका कहीं होता है।

अभी आप ही यहां बैठे हैं, कोई जरूरी थोड़े ही है कि आपका मन भी यहीं बैठा हो। आप यहां हो और मन कहीं और हो। सौ में निन्यानबे मौके तो यही हैं कि मन कहीं और होगा। आदत मन की कहीं और ही रहने की है। तो उस फकीर ने कहा कि जरूरी नहीं है। आंख बंद करो। उस फकीर के कहने पर उस राजा ने आंख बंद की, उस फकीर ने कहा कि मैं तो यह देखता हूं कि तुम एक चमार की दुकान पर खड़े हुए हो। सच बात थी। वह रात भर से सोच रहा था, उसके जूते खराब हो गए थे। और वह सोच रहा था कि एक चमार के यहां सुबह से जाकर जूते खरीद लिए जाएं। तो वह आ तो गया था फकीर के यहां। मन की शांति उतनी मूल्यवान भी कहां हैं, जूते खरीदना बहुत बड़ी बात है। तो आ तो गया था मन शांत कराने, लेकिन सोच रहा था जूते खरीदने की बात।

उस फकीर ने कहा कि मैं तो देखता हूं तुम जूते खरीद रहे हो एक दुकान पर। अभी दुकान भी नहीं खुली है और तुम पहुंच गए। और अभी चमार उठा भी नहीं और आप हाजिर हैं। राजा घबड़ाया, उसने कहा कि आप कहते तो ठीक हैं, मेरा मन तो वहीं चला गया था। उसने कहाः इसीलिए मैंने कहा था कि तुम मन ले आना। अब तुम मन ले आओ, आंख बंद करो, मन यहां आने दो और खोजो मन के भीतर कि अशांति कहां है। और जैसे ही अशांति पकड़ में आ जाए मुझे बता दो, मैं उसे हमेशा के लिए समाप्त कर दूं। उस राजा ने आंखें बंद कीं, उस निपट सन्नाटे में, सुबह वहां और कोई भी न था, रात थी अभी तो गहरी, अंधेरा था। और वह फकीर अदभुत सामने बैठा था और वह एक डंडा हाथ में लिए था। और उसने कहा कि जैसे ही तुमने बताया कि यहां अशांत है कि मैं उसे डंडे से बिल्कुल ठीक ही कर दूंगा।

पागल आदमी से पाला पड़ गया था। और राजा डरा हुआ आंख बंद करके भीतर खोजने लगा कि अशांति कहां है? वह जैसे-जैसे खोजने लगा वहां कोई अशांति पकड़ में आती भी नहीं थी। कोई आधा घंटा यह चला होगा। उस फकीर ने डंडे से उसको धक्का दिया और कहाः बहुत देर लगा रहे हो, पकड़ो कहां है अशांत मन? उसने कहाः मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं, मैं उसे खोजने जाता हूं वह मिलता नहीं। उस फकीर ने कहा कि जाओ मैंने शांत कर दिया। और तुम्हें सूत्र कहे देता हूं, अशांति को खोजना अशांति विलीन हो जाएगी। अभी तुम खोजते हो मिलती नहीं।

तुम जिस चीज के प्रति भीतर जाग जाओगे और खोजने लगोगे वह विलीन हो जाएगी। क्योंकि जागे हुए आदमी का मन दीये की ज्योति की तरह हो जाता है। अगर आपके घर में अंधेरा हो और मैं आपसे कहूं कि एक दीया जला कर खोजें कि अंधेरा कहां हैं? तो जिस कोने में आप दीया लेकर जाएंगे वहीं से अंधेरा विलीन हो जाएगा।

आप कभी दीया लेकर अंधेरे को खोज नहीं सकते। अभी तक सूरज इतने दिनों से रोज सांझ-सुबह डूबता-निकलता है, खोज रहा है, अभी तक मिल नहीं पाया अंधेरे से। अभी तक सूरज खोज नहीं पाया कि अंधेरा कहां है। वह जहां मौजूद होता है वहीं अंधेरा विलीन हो जाता है।

ज्ञान ने अब तक कोई अंधेरा नहीं जाना है भीतर। खुली आंख भीतर कोई अंधेरा नहीं जानती, कोई पाप नहीं जानती। तो आंख खोलें और भीतर खोजें कि कहां है क्रोध? और जब क्रोध उठे, तो उसका निरीक्षण करें। और जब वासना मन को पकड़े, तो उसका निरीक्षण करें। देखें, खोजें, पहचानें, दो खुली आंखों को भीतर ले जाएं। हमारी आंखें सारी दुनिया को देखती हैं, पड़ोसी को देखती हैं, दूर दुनिया में रहने वाले आदमी को देखती हैं, लेकिन खुद को, खुद को देखने के लिए हमारी दो आंखें बिल्कुल काम में हम नहीं लाते। सारी दुनिया को देखना चाहते हैं, सारी दुनिया के आलोचक बनना चाहते हैं। आलोचक का मतलब? आलोचक का मतलबः जिसने अपनी आंखें दूसरे पर जोर से जमा दीं। लोचन का मतलब आंख होता है। आलोचक का मतलब होता हैः जोर से आंख किसी पर लगा दे। ऐसे आदमी को हम लुच्चा भी कहते हैं। लुच्चे का मतलब भी यही होता है कि कोई जोर से किसी पर आंख गड़ा दे। उसको हम कहते हैं, बहुत भद्दे ढंग से देख रहा है। आलोचक और लुच्चे एक

जैसे ही होते हैं, कोई फर्क नहीं होता। दूसरे को बहुत गौर से देखना, लेकिन एक और तरह का जीवन भी होता है, खुद को ही बहुत गौर से देखना। जितनी तीव्रता से हम खुद को देखने लगें और खुद के जीवन की वृत्तियों का निरीक्षण और खोज करने लगें उतना ही आप हैरान हो जाएंगे, एक बहुत अदभुत सूत्र का जन्म होगा, दिखाई पड़ेगा कि जैसे ही देखना शुरू किया, जो-जो व्यर्थ था वह क्षीण होने लगा, जो-जो सार्थक था वह उभरने लगा, जो-जो विसंगीत था वह विदा होने लगा। जो-जो संगीत था उसकी ध्वनियां आने लगीं, जो-जो दुर्गंध थी वह जाने लगी। जो-जो सुगंध थी उसके फूल खिलने लगे।

मनुष्य की आत्मा में बहुत है, बहुत, उसे हम बाहर से भरना चाहते हैं। हम पागल हैं। इसलिए वह कभी बाहर से भर नहीं सकती, भर सकती है भीतर से। लेकिन भीतर अभी बीज पड़े हैं, उन बीजों को अगर हम फूल बना सकें तो भीतर एक बगिया बन जाए और भीतर सब भर जाए। लेकिन उन बीजों को हम फूल नहीं बना पाएंगे, क्योंकि जिसने कभी अपने भीतर जाकर देखा भी न हो वह अपने भीतर के बीजों को कैसे खोजेगा? वह उस खजाने को कैसे खोजेगा जिसके ऊपर ही बैठा हुआ है।

एक गांव में एक भिखमंगा मरा। वह तीस वर्ष से एक ही जगह बैठ कर भीख मांग रहा था। उसने बहुत भीख मांगी थी। लेकिन भीख मांगने से कहीं कुछ होता है? भीख मांगने से कभी कोई समृद्ध होता है? वह भी समृद्ध नहीं हुआ था। मर गया। एक ही जगह बैठा रहा था अपने गंदे कपड़े फैलाए हुए। तो मोहल्ले के लोगों ने सोचा, उसको तो दफनाएं, उसके कपड़ों को जलवाएं, और उन्होंने सोचा कि तीस वर्ष तक यह भिखमंगा यहां उपद्रव करता रहा बैठा, गंदगी फैलाता रहा, तो इस जमीन को भी थोड़ा बहुत खोद कर हटा दें और दूसरा मिट्टी लाकर इस पर डाल दें। तो उन्होंने एक-एक फीट चार-छह फीट का हिस्सा जमीन खोदी, खोदते ही वे हैरान रह गए, उस एक फीट नीचे ही बहुत बड़ा खजाना गड़ा हुआ था। और वह भिखमंगा तीस साल उसी खजाने पर बैठा हुआ भीख मांगता रहा। लेकिन उसने कभी जमीन ही न खोदी जिस पर वह बैठा हुआ था।

और हममें से भी मुश्किल से कभी कोई उस जमीन को खोदता है जिस पर हम बैठे हुए हैं। और वहां निश्चित खजाने हैं। उन्हीं खजानों को तो कोई क्राइस्ट पा लेता है, कोई मोहम्मद, कोई कृष्ण, कोई राम, कोई बुद्ध, कोई महावीर उसी खजाने को पाकर नाच उठता है आनंद से, समृद्ध हो जाता है, मालिक हो जाता है। और हम उसी खजाने पर बैठे भिक्षापात्र लिए भीख मांगते रहते हैं। और तीस साल बाद जब तीस साल के अभ्यास से हम खूब बड़े भारी भिखमंगे हो जाते हैं। और मरते हैं तो हमारे मरने के बाद दूसरे लोग जमीन साफ करने के लिए और हमको हटाने के लिए इंतजाम करेंगे, लेकिन हम खुद कभी, कभी भी इस ख्याल से नहीं भरते कि जब मैं पैदा हुआ हूं और मेरे भीतर जीवन इतनी लहरें ले रहा है और मेरे भीतर प्राण थिरक रहे हैं और मेरे भीतर एक चेतना है, एक होश है, एक आत्मा है, मैं जीवित हूं, जीवंत हूं, जब मेरे भीतर जीवन लहरें ले रहा है तो कहीं इस जीवन के लहरें लेते हुए व्यक्तित्व के पीछे ही कोई सागर तो नहीं छिपा, कोई खजाना तो नहीं छिपा? मैं वहां जाऊं और खोजूं। मैं वहां पहुंचू और जागूं, तो शायद, शायद खजाना एक फीट से ज्यादा दूर नहीं है।

एक छोटी सी कहानी और मैं अपनी चर्चा को पूरा करूंगा।

खजाना बहुत निकट है, उनके लिए जो आंखें खोलते हैं और उस जमीन को खोदते हैं जिस पर खड़े हैं--क्रोध पर आप खड़े हैं, सेक्स पर आप खड़े हैं, शत्रुता पर आप खड़े हैं, घृणा पर आप खड़े हैं, द्वेष पर आप खड़े हैं, इस सबको खोदें, यही जमीन है जिस पर आप खड़े हैं, जिस पर कोई भी खड़ा है, इसको खोदें, हो सकता है कि बहुत ही थोड़ी गहराई पर खजाने मिल जाएं।

क्लोरिडो का नाम सुना होगा। वहां जब सबसे पहले आज से कुछ वर्षों पूर्व सोने की खदानें मिलीं। तो वहां एक बड़ी अदभुत घटना हुई। वहां एक घटना हुई, सोने की खदानें मिली थीं, लोग जमीनें खरीद रहे थे क्लोरिडो में। और जो थोड़ी बहुत भी जमीन खरीद लेता था वही अरबपति और धनपति हो जाता था। ऐसा सोना उगल रही थी जमीन। जिनके पास जितना पैसा था उन्होंने उतना पैसा लगा कर उन्होंने जमीनें खरीद लीं। एक बहुत बड़े करोड़पति ने सोचाः छोटी-मोटी जमीन क्या खरीदूं, उसने अपनी सारी फैक्टरी बेच कर,

सारी धन-दौलत बेच कर अपना मकान तक बेच दिया और किराए के मकान में चला गया। और उसने कोई एक करोड़ रुपया लगा कर एक पूरी पहाड़ी खरीद ली। उस पहाड़ी पर उसने, बड़े-बड़े खोदने के यंत्र ले गया और खुदाई शुरू हुई और दुर्भाग्य भी शुरू हुआ। खुदाई होती गई पत्थरों के सिवाय उस पहाड़ी पर कुछ भी हाथ न लगा। आस-पास ही लोगों ने छोटे-छोटे खेत खरीद लिए थे और उन खेतों में सोना मिला था। और उस पहाड़ी पर कुछ भी नहीं था, वह पहाड़ी बिल्कुल खाली मालूम होती थी। घबड़ाहट फैल जानी स्वाभाविक थी। उसके परिवार के लोग तो मूर्च्छित होने लगे। और उन्होंने कहा कि यह क्या पागलपन किया? चलती रोजी थी, कमाई अच्छी थी, वह सब बरबाद हो गई। और एक पत्थर का पहाड़ खरीद लिया। उस आदमी ने लेकिन साहस न खोया और वह खुदाई करता ही गया और करता ही गया, लेकिन सारे घर के लोग उसे पागल कहने लगे, घर में खाने-पीने तक की मुश्किल खड़ी हो गई। उस पहाड़ से कुछ भी नहीं निकल रहा था सिवाय पत्थरों के। मजदूरों को पैसा चुकाना भी मुश्किल हो गया था। और जो यंत्र पहाड़ पर चढ़ाए थे, उन्हें उतारने के लायक पैसे भी उनके पास नहीं रहे थे।

उसने विज्ञापन किया कि मैं अपने पूरे पहाड़ को मय यंत्रों के बेचना चाहता हूं। और उसने दो करोड़ रुपये दाम रखा। उसके घर के लोगों ने, उसके मित्रों ने कहा कि तुम क्या पागल हुए हो? तुम्हारे दुर्भाग्य और दुर्घटना की खबर सारे मुल्क में पहुंच गई है, कौन इसे खरीदेगा? अब मुश्किल है कि कोई पागल इस चक्कर में फंस जाए जिसमें तुम फंसे। उस आदमी ने कहाः ऐसा मत सोचो, मुझसे भी बड़ा कोई पागल हो सकता है। और एक आदमी मिल गया जो उसे दो करोड़ में खरीदने को राजी हो गया। उसके घर के लोगों ने कहा कि तुम आंखें रहते हुए क्या अंधापन कर रहे हो? एक आदमी डूब कर, टकरा कर मर गया उसी पहाड़ से और तुम भी वही कर रहे हो। उस आदमी ने कहाः हो सकता है एक ही हाथ खोदूं और सोने की खदान आ जाए। जहां तक खोदा गया वहां तक सोना नहीं है, यह जाहिर है, लेकिन उसके आगे नहीं है यह किसने कहा। निश्चित ही लोगों ने कहाः तुम्हारा दिमाग खराब है। अपने हाथ से मुश्किल में पड़ते हो।

उसने वह पहाड़ खरीद लिया। और आश्चर्य की बात है, एक ही फीट के बाद खदान शुरू हो गई। एक ही फीट के बाद खदान है। क्लोरिडो मत जाइए। जिस जमीन पर आप बसते हैं वहीं खोद डालिए। और उस खदान को खोदने के लिए कोई बहुत बड़े मशीन और उपकरण की जरूरत नहीं, सिर्फ निरीक्षण का उपकरण चाहिए, सिर्फ देखने वाली आंखें चाहिए। खोजने वाली आंखें चाहिए, इंक्वायरी करने वाली, ऑब्जर्व करने वाली। निरीक्षण करने वाली चित्त की दशा चाहिए। तो अपने निरीक्षक हो जाएं, अपने साक्षी हो जाएं और देखें। और डरें न, घबड़ाएं न, आंख बंद न करें। आंख बंद करने वाले धर्मों ने ही मनुष्य को धर्म से वंचित किया है। एक ऐसे धर्म की दुनिया में जरूरत है जो खुली आंखों वाला हो, आंख बंद करने वाला नहीं। एक ऐसे धर्म की जरूरत है जो खुली आंख से जीवन को देखने के लिए समर्थ बनाए, साहसी बनाए, हिम्मत दे और कहे कि खोजो। हरेक व्यक्ति एक अदभुत खदान है। लेकिन जो खोजता ही नहीं उसके हाथ में पत्थर के सिवाय कुछ भी नहीं पड़ता। और जो खोजता है, उसे सोने की खदानें निश्चित उपलब्ध हो जाती हैं।

अगर एक भी मनुष्य को मनुष्य-जाति में कभी अपने भीतर स्वर्ण की खदानें मिली हैं तो हर एक-दूसरे मनुष्य को मिल सकती हैं। क्योंकि कोई एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से बहुत भिन्न नहीं है। हम अपने पाप में भी समान हैं, हम अपने भीतर परमात्मा में भी समान हैं। स्मरण रखें, हम अपने पापों में भी समान हैं तो हम अपने परमात्मा में भी समान होंगे।

एक और छोटी कहानी मैं कहूं और फिर चर्चा पूरी करूं।

एक चर्च में एक पादरी ने एक संध्या अपने सुनने वालों से कहा कि कुछ जरूरत पड़ गई है चर्च को, कुछ थोड़े से धन की जरूरत है, और मैं चाहता हूं कि सब लोग कुछ दान करें। अभी जब सभा पूरी होगी तो मैं अपनी टोपी घुमाऊंगा, तो हर कोई कुछ न कुछ दान जरूर दें, और एक बात भी स्मरण रखें, उसने आखिर में कहा, कि एक ऐसा भी आदमी यहां बैठा हुआ है, कोई बीस आदमी वहां बैठे हुए थे, एक ऐसा भी आदमी बैठा हुआ है जो

किसी दूसरे की, पराए की स्त्री से प्रेम करता है, उस स्त्री ने ही आकर मुझे कहा है, तो मैं उसे याद दिला दूं कि वह आदमी कम से कम एक डालर जरूर दे जाए, नहीं तो मैं सबके सामने उसका नाम खोल दूंगा। उस दिन उस टोपी में उन्नीस डालर पड़े। और एक आदमी जिसने डालर नहीं डाला, उसने थोड़े फुटकर पैसे डाले और साथ में चिट्ठी डाली कि कृपा करके नाम न खोलिए, रात तक पूरे पैसे पहुंचा दूंगा।

हम अपने पापों में समान हैं, हम अपने क्रोध में, अपनी ईर्ष्याओं में समान हैं, हम अपनी बेईमानी में, हम अपने धोखों में समान हैं, हम अपने अंधकार में समान हैं। लेकिन इससे घबड़ाएं न, इससे ही सबूत मिलता है कि अगर हमारे भीतर परमात्मा भी होगा तो हम उसमें भी समान होंगे। और अगर कृष्ण के भीतर मिल जाता है, और बुद्ध और महावीर के भीतर मिल जाता है, तो घबड़ाए न, पापों में हम महावीर और बुद्ध के समान हैं, तो परमात्मा में भी हम अन्य और भिन्न नहीं हो सकते। वहां भी हम समान होंगे, वहां भी हम समान हैं। सबके भीतर बैठा है कुछ, जो आंखें खुलते ही उपलब्ध हो सकता है। उस तरफ थोड़ी चेष्टा करें, उस तरफ थोड़ा प्रयास करें, उस तरफ भीतर किसी संकल्प को घनीभूत होने दें, उस तरफ कोई जीवन में जिज्ञासा और अभीप्सा बनने दें।

और स्मरण रखें, संसार की दिशा में कोई कितना ही प्रयत्न करे सफल नहीं हो सकता, क्योंकि वह दिशा भीतर को भरने में असमर्थ है। और परमात्मा की दिशा में कोई अल्प भी प्रयत्न करे, तो निश्चित सफल हो जाता है, क्योंकि वह उसको उघाड़ देती है जो भीतर मौजूद है। कुछ पाना नहीं है, उघाड़ना है। परमात्मा बहुत निकट है। सिर्फ देखने वाली आंखें चाहिए। और यह देखने वाली आंखें कहां से लाइएगा? जिसको हम पाप कहते हैं उसी पाप के प्रति जागिए, तो देखने वाली आंख पैदा हो जाएगी। और देखने वाली आंख पैदा हो जाए तो पाप विलीन हो जाता है और जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है।

मेरी इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है, उससे मैं अत्यंत अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

धर्म की सही शिक्षा

धर्म और शिक्षा पर इससे पहले कि मैं कुछ आपसे कहूं, एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा।

एक सूफी फकीर एक रात सोया, सोते समय उस फकीर के मन में एक प्रार्थना थी, परमात्मा के दर्शन की इच्छा थी। रात उसने एक सपना देखा, सपने में देखा कि वह परमात्मा के नगर में पहुंच गया है। बहुत भीड़-भाड़ है रास्तों पर, कोई बहुत बड़ा उत्सव मनाया जा रहा है। उसने पूछा किसी से, तो ज्ञात हुआ परमात्मा का जन्म-दिन है। एक बहुत बड़े रथ पर एक बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति सवार है, पूछा यही परमात्मा हैं, उधर से ज्ञात हुआ नहीं, ये तो राम हैं और उनके पीछे राम के हजारों-लाखों भक्त हैं। फिर और पीछे घोड़े पर सवार कोई बहुत महिमाशाली व्यक्ति है, पूछा, ये परमात्मा हैं, ज्ञात हुआ, ये तो मोहम्मद हैं और उनके पीछे उनके भक्त हैं। और ऐसे वह शोभायात्रा लंबी होती गई। क्राइस्ट निकले, और महावीर, और बुद्ध, और जरथुस्त्र, और धीरे-धीरे शोभायात्रा समाप्त हो गई। और सबसे अंत में एक बहुत बूढ़ा आदमी एक घोड़े पर निकला जिसके साथ कोई भी नहीं था। उसे देख कर, उस फकीर को देख कर हंसी आने लगी, किसी से उसने पूछा कि यह कौन पागल है जो अकेला घोड़े पर सवार है, और जिसके साथ कोई भी नहीं है? तो ज्ञात हुआ वह परमात्मा है। उसे बहुत हैरानी हुई। और उसने पूछा कि राम के साथ बहुत लोग हैं, क्राइस्ट के साथ बहुत लोग हैं, बुद्ध और महावीर के साथ बहुत लोग हैं, मोहम्मद के साथ बहुत लोग हैं, लेकिन परमात्मा के साथ कोई क्यों नहीं? ज्ञात हुआ, सारे लोग मोहम्मद, महावीर और राम में बंट गए हैं, परमात्मा के लिए कोई बचा नहीं।

उसकी घबड़ाहट में नींद खुल गई। उसने कभी सोचा भी नहीं था, वह बहुत घबड़ाया। लेकिन यह स्वप्न मैं इसलिए आपसे कह रहा हूं ताकि मैं यह आपसे कह सकूं कि वस्तुतः ऐसी ही स्थिति सारी दुनिया में घट गई है। हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, लेकिन धार्मिक कोई भी नहीं है। धार्मिक होना बहुत अलग बात है। हिंदू होने से, मुसलमान होने से...

इसके पहले कि मैं धर्म और शिक्षा के संबंध में आपसे कुछ कहूं, यह कह देना जरूरी है कि धर्म से मेरा अर्थ हिंदू, मुसलमान और जैन से नहीं है, ईसाई और पारसी से नहीं है। जब तक कोई मनुष्य हिंदू है या मुसलमान है तब तक धार्मिक होना असंभव है। और जितने लोग धर्म और शिक्षा के लिए विचार करते हैं और जो लोग शिक्षा के साथ धर्म को जोड़ना चाहते हैं, धर्म से उनका अर्थ या तो हिंदू होता है या मुसलमान होता है या ईसाई होता है। ऐसी धार्मिक शिक्षा धर्म तो नहीं लाएगी मनुष्य को और अधिक अधार्मिक बनाती है। इस तरह की शिक्षा तो कोई चार-पांच हजार वर्षों से मनुष्य को दी जाती रही है। लेकिन उसने कोई बेहतर मनुष्य पैदा नहीं किया। उससे कोई अच्छा समाज पैदा नहीं हुआ। विपरीत हिंदू, मुसलमान और ईसाई के नामों पर जितना अधर्म, जितनी हिंसा, जितना रक्तपात हुआ है उतना किसी और बात से नहीं हुआ।

यह जान कर बहुत हैरानी होती है, नास्तिकों के ऊपर, उनके ऊपर जो धर्म के विश्वासी नहीं हैं, बड़े पापों का कोई जिम्मा नहीं है। बड़े पाप उन लोगों के नाम पर हैं जो आस्तिक हैं। नास्तिकों ने न तो मंदिर जलाए हैं, न मस्जिदें, और न लोगों की हत्याएं की हैं। हत्याएं की हैं उन लोगों ने जो आस्तिक हैं। मनुष्य को मनुष्य से विभाजित भी उन लोगों ने किया है जो आस्तिक हैं। जो अपने को धार्मिक समझते हैं उन्होंने ही मनुष्य और मनुष्य के बीच दीवाल खड़ी की है। तो यदि धार्मिक शिक्षा का यह अर्थ हो कि हम गीता सिखाएं, कुरान सिखाएं या बाइबिल सिखाएं, तो यह बड़ी खतरनाक शिक्षा होगी। यह शिक्षा धार्मिक नहीं हो सकती। क्योंकि ये बातें

जिन लोगों को सिखाई गई हैं वे लोग कोई अच्छे मनुष्य सिद्ध नहीं हुए हैं। और इन बातों के नाम पर जो भेद खड़े हुए हैं उन्होंने मनुष्य के पूरे इतिहास को रक्तपात और हिंसा से भर दिया है, क्रोध और घृणा से भर दिया। तो सबसे पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि धर्म की शिक्षा से मेरा प्रयोजन किसी संप्रदाय, उसकी धारणाओं, उसके सिद्धांतों की शिक्षा से नहीं है। एक बात निषेधात्मक रूप से, यदि हम चाहते हैं कि शिक्षा और धर्म संबंधित हों, तो हमें चाहना होगा कि हिंदू, मुसलमान और ईसाई शब्दों से धर्म का संबंध टूट जाए। तो ही शिक्षा और धर्म संबंधित हो सकते हैं। नहीं तो शिक्षा और धर्म कभी संबंधित न हो सकते हैं और न होने चाहिए। अगर एक धार्मिक सभ्यता पैदा करनी हो, तो वह सभ्यता हिंदू नहीं होगी, वह सभ्यता मुसलमान भी नहीं होगी; वह सभ्यता पूरब की भी नहीं होगी, वह सभ्यता पश्चिम की भी नहीं होगी। वह सभ्यता अखंड मनुष्य की होगी, सबकी होगी, समग्र की होगी। किसी एक अंश और एक खंड की वह सभ्यता नहीं हो सकती। क्योंकि जब तक हम मनुष्यता को खंडित करेंगे तब तक हम द्वंद्व और युद्ध से मुक्त नहीं हो सकते। जब तक मेरे और आपके बीच कोई दीवाल होगी तब तक बहुत कठिनाई है कि हम एक ऐसे समाज को निर्मित कर सकें जो प्रेम और आनंद में जीए।

अभी तो हमने जो समाज निर्मित किया है, कोई तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध जमीन पर हुए हैं। तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध! शायद कल्पना भी न हो, तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध बहुत ज्यादा होते हैं। अगर प्रति वर्ष पांच युद्ध हो रहे हों तो क्या अर्थ हुआ? तीन हजार वर्षों के इतिहास में केवल तीन सौ वर्ष का छोटा सा टुकड़ा ऐसा है जब युद्ध नहीं हुए। वे भी तीन सौ वर्ष इकट्ठे नहीं, कभी एक दिन, कभी दो दिन, कभी दस दिन जमीन पर युद्ध बंद रहा है, ऐसा सब मिला कर कालखंड तीन सौ वर्ष होते हैं। तीन सौ वर्ष शांति और तीन हजार वर्ष युद्ध और यह भी शांति कैसी? एकदम झूठी। जिसे हम शांति के क्षण कहते हैं वे असल में शांति के क्षण नहीं हैं, बल्कि नये युद्ध की तैयारी के दिन हैं।

मैं तो मनुष्य के इतिहास को दो हिस्सों में बांटता हूंः युद्ध का काल और युद्ध की तैयारी का काल। अभी तक शांति का कोई काल हमने नहीं जाना है। ऐसा जो यह विभाजित मनुष्य है, इसके विभाजन में सबसे बड़ी दीवाल, आइडियोलॉजी, विचार, धर्म और धारणा की है। बातें बदल जाती हैं, आज कम्युनिज्म है और अमरीका का लोकतंत्र है। वे भी दो धर्म बन कर खड़े हो गए। उनकी भी लड़ाई दो धर्मों जैसी लड़ाई हो गई है। क्या यह नहीं हो सकता कि हम विचार के आधार पर मनुष्य के विभाजन को समाप्त कर दें? क्या यह उचित है कि विचार जैसी बहुत हवाई चीज के लिए हम मनुष्य की हत्या करें? क्या यह उचित है कि मेरा विचार और आपका विचार, मेरे हृदय और आपके हृदय को शत्रु बना दे? अब तक यही हुआ है। और अब तक धर्मों के नाम पर खड़े हुए संगठन हमारे प्रेम के संगठन नहीं हैं, बल्कि हमारी घृणा के संगठन हैं। और इसीलिए आपको ज्ञात होगा कि जब भी दुनिया में घृणा का जहर जोर से फैला दिया जाए तो किसी को भी संगठित किया जा सक ता है।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा हैः अगर किसी कौम को संगठित करना हो तो किसी दूसरी कौम के प्रति घृणा पैदा कर दो। कोई खतरा पैदा कर दो। मुसलमान को इकट्ठा होना होता है, तो वह कहता है, इसलाम खतरे में है, और तब मुसलमान इकट्ठा हो जाते हैं। और हिंदू को इकट्ठा होना हो, तो वह कहता है, हिंदू धर्म खतरे में है, और हिंदू इकट्ठे हो जाते हैं। अभी पाकिस्तान का हमला भारत पर हुआ या चीन का, तो सारे भारत में एकता मालूम पड़ी, वह एकता एकदम खतरनाक और झूठी है। वह प्रेम की एकता नहीं है। वह तो सामने खड़े दुश्मन के खिलाफ जो हमारे मन में घृणा है, उसकी एकता है। दुश्मन चला जाएगा, एकता भी चली जाएगी।

ये हमारे सारे संगठन, जिनको हम धर्म कहते हैं, किसी की घृणा पर खड़े हुए हैं। और घृणा का धर्म से क्या संबंध हो सकता है? मेरे और आपके बीच जो चीज भी घृणा लाती हो वह धर्म नहीं हो सकती। मेरे और

आपके बीच जो चीज प्रेम लाती हो वह धर्म हो सकती है। और यह भी स्मरण रखें, अगर मनुष्य को मनुष्य से तोड़ देती हो कोई चीज तो वही चीज मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ सकेगी? मनुष्य को मनुष्य से तोड़ देने वाली कोई बात मनुष्य को परमात्मा से जोड़ने वाली बात कभी भी नहीं बन सकती। लेकिन जिनको हम धर्म कहते हैं वे हमें तोड़ रहे हैं। यद्यपि वे सभी प्रेम की बातें करते हैं। और वे सभी इस बात की भी बातें करते हैं--हम सबके बीच एकता, भ्रातृत्व, ब्रदरहुड की। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है, उनकी सारी बातें बातें ही रह जाती हैं और वे जो भी करते हैं उससे घृणा फैलती है और शत्रुता फैलती है। क्रिश्चएनिटी बातें करती है प्रेम की, लेकिन जितनी हत्या ईसाईयों ने की है उतनी हत्या शायद ही किसी ने की हो। तो थोड़ी हैरानी होती है, थोड़ी घबड़ाहट होती है। और तब ऐसा प्रतीत होता है अच्छी बातें बुरे कामों को छिपाने का रास्ता बन जाती हैं और कुछ भी नहीं। अगर लोगों को मारना हो तो प्रेम के नाम पर मारना बहुत आसान है। और अगर हिंसा करनी हो तो अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसा करना बहुत आसान है। और अगर मुझे आपकी जान लेनी हो, तो आपके ही हित में जान लेना आसान होगा, क्योंकि तब आप मरेंगे भी और मैं दोषी भी नहीं होऊंगा। तब आप मरेंगे भी, मारे भी जाएंगे और शिकायत भी नहीं कर सकेंगे।

तो शैतान ने मालूम होता है मनुष्य को बहुत पहले यह समझा दिया कि अगर कोई बुरा काम करना हो तो नारा अच्छा चुनना, स्लोगन अच्छा होना चाहिए। जितना बुरा काम हो उतना ऊंचा नारा होना चाहिए, तो बुरा काम छिप जाता है। ये जो धर्मों के नाम पर संगठन हैं--न तो इनका परमात्मा से कोई संबंध है, न प्रेम से है, न प्रार्थना से, न धर्म से। ये हमारे भीतर वह जो घृणा है, ईर्ष्या है, हिंसा है उसके संगठन हैं। अन्यथा यह कैसे हो सकता था कि मस्जिदें जलाई जाएं, मंदिर जलाए जाएं, मूर्तियां तोड़ी जाएं, आदमी मारे जाएं, यह कैसे हो सकता था? यह हुआ है, होता रहा है। कोई भी धर्म की शिक्षा तभी धार्मिक होगी जब इस सबसे उसका संबंध छूट जाए। लेकिन ये सारे धार्मिक लोग चाहते हैं कि बच्चों को धर्म की शिक्षा दी जाए। ये क्यों चाहते हैं? इनकी इतनी उत्सुकता क्या है? इनकी उत्सुकता यह है कि कहीं बच्चे उन घेरों के बाहर न हो जाएं जिन घेरों के भीतर अब तक आदमी जीया है। क्योंकि अगर बच्चे उन घेरों और दीवालों के बाहर हो गए, तो पुरानी पूरी की पूरी संस्कृति भूमिसात हो जाएगी। हो जानी चाहिए। उसे रोकने का भी कोई कारण नहीं है। तो पुराने सारे घेरे गिर जाएंगे, पुराने सारे स्वार्थ के केंद्र टूट जाएंगे, पुराना सारा शोषण टूट जाएगा।

इसलिए हर पीढ़ी अपने बच्चों को अपनी सब बीमारियां दे जाना चाहती है। इसमें उसके अहंकार की भी पूर्ति होती है। इसलिए बाप अगर हिंदू है तो बच्चे को हिंदू बना जाना चाहता है। क्यों? मुसलमान बाप बच्चे को मुसलमान बना जाना चाहता है। और इसके पहले कि बच्चे में विचार पैदा हो, क्योंकि विचार पैदा हो जाए तो हिंदू या मुसलमान होना बहुत मुश्किल हो जाएगा। विचारशील व्यक्ति कैसे हिंदू हो सकता है? कैसे मुसलमान हो सकता है? इसलिए बच्चा जब बहुत छोटा हो जब उसमें विवेक और विचार पैदा न हुआ हो, तभी ये कीटाणु हिंदू और मुसलमान होने के उसके भीतर डाल दिए जाने चाहिए। जब वह होश में आए तो उसके खून में मिल जाए यह जहर। और तब वह इस जहर से मुक्त न हो सके।

इसलिए सभी ये तथाकथित धार्मिक लोग छोटे-छोटे बच्चों को धर्म की शिक्षा दिलाने के लिए बहुत उत्सुक हैं। इनकी उत्सुकता कोई शुभ नहीं है। और वह यह कि जब उनका विवेक जाग्रत नहीं हुआ है तब उनके भीतर विश्वास डाल दिए जाएं। विश्वास तो अंधे होते हैं, विश्वास तो अज्ञान से भरे होते हैं। और जब एक बार मन की अचेतन पर्तों को विश्वास पकड़ लेते हैं, तो विचार के जगने में सदा के लिए बाधा हो जाती है। जो हिंदू है वह सोच नहीं सकता फिर, जो मुसलमान है वह भी नहीं सोच सकता। क्योंकि सोचने में खतरा हो सकता है। सोचने में खुद के विश्वास तोड़ने का डर हो सकता है। इसलिए फिर विचार को रोका जाता है।

ये जो तथाकथित धर्म हैं और उनकी जो शिक्षा है वह विचार की शिक्षा नहीं है, वह विश्वास की शिक्षा है। और स्मरण रखिए अगर विचार की शिक्षा हो, तो बहुत दिन तक बहुत धर्म नहीं रह सकते, एक ही धर्म शेष रह

जाएगा। लेकिन अगर विश्वास की शिक्षा हो तो अनेक धर्म हो सकते हैं। आखिर, आखिर विज्ञान धीरे-धीरे सार्वजनीय सत्यों पर आ गया। गणित हिंदू का अलग नहीं होता, मुसलमान का अलग नहीं होता। लेकिन क्या आपको पता है कि पहले गणित अलग होता था? हिंदुस्तान में जैनियों का गणित अलग, हिंदुओं का गणित अलग था, गणित, गणित कैसे दो हो सकते हैं? क्या एब्सर्ड, कैसी नासमझी की बात है? गणित दो हो सकते हैं? हिंदुओं की भूगोल अलग, जैनियों की भूगोल अलग थी, भूगोल, भूगोल दो कैसे हो सकती हैं? लेकिन अलग थीं। यह अलग इसलिए थीं कि ये विश्वास पर खड़ी थीं। विचार की कोई, विचार की कोई खोज-बीन नहीं थी, विचार और तर्क का कोई आधार नहीं था। तर्क और विचार सार्वजनीय सत्यों पर ले आता है। और विश्वास स्थानीय होता है, सार्वजनीय नहीं होता, नहीं हो सकता। क्योंकि विश्वास को सार्वजनीय होने का कोई आधार नहीं होता है। फिर विश्वास अंधा होता है, उसके पास आंखें नहीं होतीं।

क्या आपको पता है, अरस्तू जैसा विचारशील व्यक्ति भी अपनी किताब में लिखा हैः कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। अरस्तू? और खुद की उसकी दो औरतें थीं, एक भी नहीं। और कभी भी बैठ कर उन औरतों के दांत गिन सकता था। लेकिन नहीं; यूनान में यह विश्वास था कि औरतों के दांत कम होते हैं। असल बात यह है कि मनुष्य, पुरुष यह मानने को कभी राजी नहीं है कि स्त्री उसके बराबर होती है, उससे कम होनी चाहिए। पुरुष के बराबर कैसे हो सकती है? दांत कैसे बराबर हो सकते हैं? इसलिए कभी गिनने का सवाल नहीं उठा। एक हजार साल तक यूनान के करोड़ों लोग यह मानते रहे कि स्त्रियों के दांत कम होते हैं। किसी ने गिना नहीं। स्त्रियां घर-घर में उपलब्ध हैं। पुरुषों से थोड़ी ज्यादा ही हैं, कम नहीं हैं। किसी ने गिनती नहीं की। किसी ने शक भी नहीं किया।

विचार की पहली बुनियाद होती हैः शक, संदेह, डाउट। और विश्वास का आधार होता हैः कभी शक मत करना, संदेह मत करना। जो संदेह नहीं करता वह कभी विचार भी नहीं करता, वह कभी खोज भी नहीं करता। तो ये तथाकथित धर्म सिखाते हैं--विश्वास करो। जब कि धर्म सिखाएगा विचार करो। और धर्म विश्वास पर खड़ा नहीं होगा, बल्कि विवेक पर खड़ा होगा। और विवेक पर जो धर्म खड़ा होगा वह बहुत शीघ्र जिस भांति पदार्थ के संबंध में हमने सार्वजनीय, युनिवर्सल नियम खोज लिए, उसी भांति आत्मा और परमात्मा के संबंध में भी सार्वजनीय नियम खोज लेगा। विचार की गति सार्वजनीयता की तरफ है, युनिवर्सेलिटी की तरफ है।

धर्म से और शिक्षा का संबंध तब होगा जब धर्म का संबंध विचार से होगा, विश्वास से नहीं। और तब फिर वह हिंदू की और मुसलमान की शिक्षा नहीं रह जाएगी, तब वह धर्म की शिक्षा हो जाएगी। जब तक धर्म का संबंध विश्वास से है तब तक धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। धर्म का नाम भला लिया जाए--वह हिंदू की शिक्षा होगी, या मुसलमान की, या ईसाई की, या जैन की शिक्षा होगी, यह कोई भी शिक्षा धार्मिक नहीं है। क्योंकि इस तरह से शिक्षित आदमी संकीर्ण हो जाता है, विराट नहीं। इस तरह से शिक्षित आदमी पक्षपातों, प्रिज्युडिस से भर जाता है। विवेक उसका मुक्त नहीं होता, बल्कि बंधा हो जाता है। इस तरह का व्यक्ति खोज करने में असमर्थ हो जाता है, क्योंकि जितने ज्यादा विश्वास उतनी खोज कठिन है। खोज के लिए चाहिए मुक्त, विश्वास से स्वतंत्र चित्त। सब विश्वासों से मुक्त चित्त।

लेकिन ये सारे धर्म तो सिखाते हैं कि जो संदेह करेगा वह नष्ट हो जाएगा। यह कोई धर्म नहीं सिखाते कि तुम विचार करो, क्योंकि हो सकता है कि विचार उन नतीजों पर ले जाए जो उनके नतीजों से मेल न खाएं। इसलिए विचार से ये भयभीत हैं। सारे धर्म विचार से भयभीत हैं। इसलिए दुनिया का कोई विकास नहीं हो सका, मनुष्य-जाति का विकास नहीं हो सका। जहां विचार से भय है वहां विकास असंभव है। समस्त विकास विचार का विकास है।

धर्म शिक्षा का केंद्र बन सकता है, लेकिन इसके पहले धर्म का कें्रद विचार को बनाना होगा, विश्वास को नहीं। इसके पहले कि धर्म शिक्षा में आए धर्म को पुनःर्शिक्षित होना पड़ेगा, धर्म को खुद पुनःर्दीक्षित होना पड़ेगा। वैसा ही धर्म नहीं प्रवेश पा सकता विद्यापीठों में जैसा धर्म बाजार में प्रचलित है। वह गलत है। वह बुनियादी रूप से गलत है। तो विद्यापीठों में, शिक्षालयों में निश्चित ही धर्म आना चाहिए। क्योंकि यह बात अधूरी होगी कि हम केवल पदार्थ के संबंध में चिंतन करें, यह बात अधूरी होगी कि हम केवल पदार्थ के संबंध में खोज-बीन करें। यह पूरे मनुष्य को जानने में बहुत अधूरी सिद्ध होगी। जानना ही होगा, सोचना ही होगा, विचारना ही होगा मनुष्य की चेतना के संबंध में, उसकी आत्मा के संबंध में। जीवन में पदार्थ ही सब कुछ नहीं है, कुछ और भी है, कुछ और विराटतर भी हमारे भीतर है। उसे खोजना होगा, जानना होगा, विचारना होगा।

लेकिन ये जो तथाकथित धर्म हैं, ये उसे विचारने के लिए स्वतंत्रता देने को राजी नहीं है। इन धर्मों का शिक्षा से कोई संबंध नहीं हो सकता है। और दुर्भाग्य होगा कि इनका कोई संबंध हो जाए। इनका संबंध नहीं होना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि धर्म का संबंध नहीं होना चाहिए। धर्म का संबंध तो होना चाहिए। एक दिशा तो विज्ञान है बाहर, जो हमारा जगत है, उसको हम खोज रहे हैं। एक दिशा धर्म है भीतर, हमारा जो जगत है, उसे भी खोजना है। दो जगत हैं, एक हमारे बाहर है, एक हमारे भीतर है।

राबिया नाम की एक फकीर औरत थी। एक दिन सुबह उसके दरवाजे पर उसके एक मित्र ने कहा कि राबिया बाहर आओ, बहुत सुंदर सूरज उग रहा है, बड़ी सुंदर सुबह है, इतनी सुंदर प्रभात मैंने कभी नहीं देखी, बाहर आओ। राबिया ने कहाः मित्र, मैं तुम्हें निमंत्रण देती हूं कि तुम्हीं भीतर आ जाओ, क्योंकि तुम जिस सूरज को देख रहे हो और जिस सुबह को, मैं उसके बनाने वाले को भीतर देख रही हूं, मित्र, तुम भीतर आ जाओ।

एक बाहर दुनिया है, निश्चित ही बहुत सुंदर। और वे लोग नासमझ हैं जो बाहर की दुनिया के विरोध में मनुष्य को खड़ा करना चाहते हों। बहुत सुंदर है बाहर की दुनिया। और वे लोग मनुष्य के मंगल में नहीं हैं जो लोग उस दुनिया को कंडेम करते हों, उस बाहर की दुनिया को निंदा करते हों। बहुत सुंदर है बाहर की दुनिया, लेकिन और बड़ी सुंदर दुनिया भी एक भीतर है। बाहर की दुनिया पर जो रुक जाता है वह अधूरे पर रुक गया। शायद वह खजाने के बाहर ही रुक गया। शायद उसने बाहर की पर्त को, बाहर की देह को ही देखा और भीतर नहीं पहुंचा। भीतर और भी विराटतर, और भी सुंदरतम कुछ है। धर्म उसकी खोज है भीतर जो है मनुष्य के, समस्त के, प्रकृति के, उसकी खोज है धर्म। विज्ञान जो बाहर है उसकी खोज है। बाहर की खोज अधूरी है। भीतर की खोज से शिक्षा का जरूरी संबंध होना चाहिए।

लेकिन जिन धर्मों को हम जानते हैं उनकी खोज भी भीतर की खोज नहीं है। वे बातें तो परमात्मा की करते हैं, लेकिन बातें एकदम झूठी मालूम पड़ती हैं। उनके मंदिर भी बाहर ही बनते हैं और उनकी मस्जिदें भी बाहर ही बनती हैं, और उनकी मूर्तियां भी बाहर ही खड़ी होती हैं, और उनके शास्त्र भी बाहर हैं, और उनके सिद्धांत भी बाहर हैं। और इन बाहर की चीजों पर वे लड़ते भी देखे जाते हैं। उनका आग्रह भी है इन पर, पर वे भी मनुष्य को भीतर नहीं ले जाते।

एक नीग्रो एक चर्च के द्वार पर एक दिन सुबह-सुबह गया और उसने प्रार्थना की उस चर्च के पुरोहित से कि मुझे भीतर आने दें। लेकिन नीग्रो काली चमड़ी का आदमी और सफेद चमड़ी वाले लोगों के मंदिर में कैसे जा सकता है? यह जो भीतर की बातें करते हैं यह भी चमड़ी को देखते हैं कि वह काली है या गोरी? ये जो परमात्मा की बातें करते हैं वे भी देखते हैं कि ब्राह्मण है या शूद्र? उस चर्च के पादरी ने कहा कि मित्र, क्या करोगे मंदिर में आकर भी? जब तक मन शांत नहीं है तब तक क्या करोगे आकर? जमाना बदल गया है, इसलिए पुरोहित ने अपनी भाषा बदल ली है। पहले भी रोकता था वह, लेकिन पहले वह कहता था कि हट शूद्र, यहां कहां तुझे प्रवेश। लेकिन अब जमाना बदल गया है, उसे अपनी भाषा बदलनी पड़ी। रोकता वह अब भी है। उसने यह नहीं कहा कि शूद्र यहां से भाग जाओ, उसने कहा कि क्या करोगे मंदिर में आकर भी, जब तक मन ही

शांत नहीं है तो परमात्मा को कैसे जानोगे? यह बात उसने उस नीग्रो से कही, लेकिन सफेद चमड़ी के लोग जो रोज आते थे उनमें से किसी से भी कभी यह नहीं कहा था। जैसे उन सबके मन शांत हो गए हों। वह नीग्रो सीधा होगा, इसलिए चला गया। सीधा होगा, तभी तो वह भगवान को खोजने किसी चर्च में गया था, अगर सीधा न होता तो क्यों किसी चर्च में जाता? भोला-भाला होगा। नासमझ होगा। नहीं तो किसी चर्च से भगवान का क्या संबंध है? अपने भीतर जाता, चर्च में क्यों जाता?

लौट गया। कोई दस-पांच दिन बीत जाने के बाद वह पुरोहित, चर्च का पादरी उसे रास्ते पर मिला। और पूछा कि मित्र, फिर दिखाई नहीं पड़े? उस नीग्रो ने कहाः मैंने रात जाकर परमात्मा से प्रार्थना की कि मेरे हृदय को शांत कर, मेरे मन को शांत कर ताकि मैं तुझे जान सकूं और तुझसे मिल सकूं। रात मुझे एक सपना आया और भगवान मुझे दिखाई पड़े और उन्होंने मुझसे पूछा कि तू किसलिए, तू किसलिए उस चर्च में जाना चाहता है? मुझसे मिलने? तू बिल्कुल पागल है। दस साल से मैं खुद ही कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी मुझे चर्च के भीतर घुसने ही नहीं देता। जहां मैं नहीं जा सका हूं वहां तू जा सकेगा यह बहुत कठिन है।

इन मंदिरों में और मस्जिदों में, और इनके आग्रह करने वाले लोगों में बाहर के प्रति इतनी आस्था है, इतना आदर है कि ये भीतर के प्रति जानकार हों यह संभव नहीं मालूम होता। मंदिर और मस्जिद तो शिक्षा से नहीं जुड़ सकते हैं। नहीं जुड़ने चाहिए। लेकिन हां, भीतर जाने का कोई द्वार, भीतर जाने का कोई मार्ग, जरूर उसके बिना शिक्षा एकदम अधूरी है, एकदम अधूरी है। कभी मैं देखता हूं कि इन शिक्षालयों में मंदिर बनाने की योजनाएं चलती हैं, वे गलत हैं। मंदिर किसी का होगा, हिंदू का होगा या मुसलमान का होगा, या ईसाई का होगा। मंदिर किसी का होगा। और जो किसी का है वह परमात्मा का नहीं हो सकता। परमात्मा का मंदिर भी है, लेकिन वह ईंट और पत्थरों से नहीं बनता। परमात्मा का मंदिर भी है, लेकिन बाहर जो स्थान है उस पर जगह घेर कर नहीं बनता। मनुष्य के भीतर जो है चेतना उससे निर्मित होता है। और वहीं निर्मित होता है। स्थान में नहीं, आत्मा में। बाहर नहीं भीतर, अंतस में। तो अंतस में परमात्मा का मंदिर बने, इस तरफ शिक्षा की दृष्टि न होगी तो शिक्षा बहुत अधूरी होगी, बहुत अधूरी होगी। और अब तक सारी शिक्षा अधूरी रही है। और इसलिए अब तक सारी शिक्षा एक लंबी असफलता से ज्यादा नहीं है। बीस-पच्चीस वर्ष की उम्र तक हम शिक्षित करके युवक को दुनिया में भेजते हैं, वह एकदम अधूरा आदमी होता है। उसे जीवन में जो भी केंद्रीय है उसका कोई पता नहीं होता। जीवन में जो भी मूल्यवान है उसका कोई भी पता नहीं होता। जीवन में जो शूद्र है वह केवल उसकी गणना सीख कर ही आता है। और तब पच्चीस वर्ष तो उसने शूद्र को सीखने में गंवाए होते हैं, शेष जीवन उस शूद्र के व्यवहार में गंवा देता है।

सम्यक शिक्षा धर्मविहीन नहीं हो सकती। क्योंकि सम्यक शिक्षा मनुष्य के अंतःकरण की शिक्षा ही होगी। क्या है हमारे भीतर? और कैसे वह शिक्षित हो सकता है? क्या कुछ सिद्धांत हम सिखाएं? क्या हम सिखाएं बच्चों को कि ईश्वर है? क्या हम सिखाएं कि आत्मा है? परलोक है, स्वर्ग-नरक हैं, मोक्ष है यह सिखाएं? नहीं, इस तरह की शिक्षा भी मनुष्य को भीतर नहीं ले जा सकती। इसलिए कि जो भी हम सिखा देते हैं वह हमारे भीतर जाकर हमारा पक्ष, हमारी प्रिज्युडिस बन जाती है।

एक छोटे से अनाथालय में मैं गया। वहां कोई सौ बच्चे थे। और अनाथ बच्चे। तो उनको तो जो भी शिक्षा देनी हो वह दी जा सकती है। कोई कठिनाई नहीं। तो उनको धर्म की शिक्षा दी जाती थी। क्योंकि अनाथ बच्चों को तो कुछ भी सिखा सकते हैं आप जो भी सिखाना चाहें। अब उनका कोई मां-बाप ही नहीं है। तो उनको धर्म की शिक्षा दी जाती थी। मुझे अनाथालय के संयोजकों ने कहा कि हम यहां धर्म की शिक्षा देते हैं। तो मैंने उनसे कहाः मैं अभी तक समझ ही नहीं पाया कि धर्म की शिक्षा कैसे हो सकती है? धर्म की साधना हो सकती है शिक्षा नहीं। इसमें थोड़ा सा मैं फर्क करता हूं। और वही धर्म की शिक्षा है--धर्म की साधना। तो मैंने कहाः शिक्षा कह देते होंगे, खैर मैं देखूं।

तो उन्होंने कहा कि आप इनसे कोई भी प्रश्न पूछिए, ये बराबर उत्तर देंगे कि यह हो सकता है। उन्होंने खुद ही पूछाः ईश्वर है? उन छोटे-छोटे बच्चों ने हाथ उठा कर हिलाए कि हां, ईश्वर है। उन्होंने पूछाः यह आत्मा है? उन बच्चों ने कहाः हां, आत्मा है। उन्होंने पूछाः आत्मा कहां? उन सब बच्चों ने अपने हृदय पर हाथ रखा और कहा आत्मा यहां है। जैसे हम मिलिटरी में लेफ्ट-राइट करना सिखा देते हैं, ऐसे ही उन्होंने उनको यह सिखा दिया। उनको यह सिखा दिया कि उनका हाथ हृदय पर चला गया। आत्मा कहां है? तो उन्होंने कहाः यहां है। मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा कि हृदय कहां है? उसने कहाः यह तो हमें बताया ही नहीं गया। जो उसे बताया गया था वह उन्होंने बताया। जो उन्हें नहीं बताया गया था वह कैसे बताता? हृदय का कोई पता नहीं, आत्मा कहां है यह मालूम है! परमात्मा कहां है यह मालूम है!

मैंने उन संयोजकों से कहा कि इन बच्चों को आप जीवन भर के लिए धर्म से तोड़े दे रहे हैं। क्योंकि ये बातें ये सीख जाएंगे और यही खतरा है। और फिर जीवन भर इन्हीं सीखी हुई बातों को दोहराते रहेंगे। और सीखी हुई बातों को जो दोहराता है वह जानने से वंचित रह जाता है। सीखीं हुई बातें दोहराते रहेंगे जीवन भर, जीवन जब भी समस्या खड़ी करेगा तभी इनके बंधे हुए उत्तर भीतर से आ जाएंगे। जीवन पूछेगा, ईश्वर है, और इनका सीखा हुआ उत्तर कहेगा, ईश्वर है। और जीवन पूछेगा, कहां है, और इनके हाथ मशीनों की भांति अपने हृदय पर चले जाएंगे और कहेंगे--यहां। और ये बिल्कुल हाथ झूठे होंगे। क्योंकि ये सिखाए हुए हैं। सिखाई हुई बातें पदार्थ के जगत में तो अर्थ रखती हैं परमात्मा के जगत में कोई भी अर्थ नहीं रखतीं सिखाई हुई बातें।

अगर हम किसी को प्रेम करना सिखा दें, तो एक बात पक्की, इस जीवन में अब वह प्रेम को कभी न जान पाएगा। अगर हम उसे सिखा दें प्रेम कैसे करना चाहिए, क्या बोलना चाहिए, कैसे मिलना चाहिए या कैसे गले लगाना चाहिए, सब सिखा दें, तो वह एक्टिंग सीख जाएगा प्रेम करने की और फिर प्रेम को कभी नहीं जान पाएगा, कभी नहीं जान पाएगा। अभिनेता प्रेम को कभी नहीं जान सकते। हालांकि वे ही चौबीस घंटे प्रेम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। कभी भी अभिनेता प्रेम को नहीं जान सकता। क्योंकि प्रेम, प्रेम उसकी ट्रेनिंग है, प्रशिक्षण है। प्रेम उसने सीखा है, प्रेम उसके लिए एक कला है, एक आर्ट। प्रेम उसके लिए जीवन नहीं है, अनुभव नहीं है। जब प्रेम नहीं सीखा जा सकता तो प्रार्थना कैसे सीखी जा सकती है? प्रार्थना तो प्रेम का और भी गहनतम रूप है। और जब प्रेम नहीं सीखा जा सकता तो परमात्मा कैसे सीखा जा सकता है? परमात्मा तो जो हमारे जीवन में सबसे ज्यादा अननोन है, सबसे ज्यादा अज्ञात है वही है। उसे सीखा नहीं जा सकता, उसे जाना जा सकता है।

धर्म की शिक्षा का यह मतलब नहीं हो सकता कि आपको कुछ सिद्धांत सिखा दिए जाएं और आपको उनकी परीक्षा दिलवा दी जाए और आप परीक्षा में पास हो जाएं। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है उसकी कोई परीक्षा नहीं हो सकती, जीवन में जो भी व्यर्थ है उसी की परीक्षा हो सकती है। इसलिए जो लोग परीक्षाएं पास करके इतरा जाते हैं, वे बिल्कुल पागल हैं। क्योंकि परीक्षा तो किसी महत्वपूर्ण तत्व की नहीं हो सकती। परीक्षाएं जहां समाप्त हो जाती हैं वहीं शिक्षा शुरू होती है। जहां तक परीक्षाएं चलती हैं वहां तक आप बचपन में हैं। वे सब बच्चों की बातें हैं। जीवन की प्रौढ़ता बड़ी और बात है।

तो धर्म जाना जा सकता है, सिखाया नहीं जा सकता, कोई दूसरा आपको नहीं सिखा सकता। कोई सिद्धांत, कोई उपदेश आपको धार्मिक नहीं बना सकते हैं। फिर क्या करें? क्या हो? हम बीज बो देते हैं, फिर पौधे को निकालते थोड़े ही हैं बीज से, पौधा निकलता है। हम केवल व्यवस्था जुटा देते हैं, बीज को डाल देते हैं--पानी, खाद और सब जुटा देते हैं, बागुड़ लगा देते हैं; फिर पौधा निकलता है, पौधा निकाला नहीं जाता है। फिर उसमें कलियां आती हैं, कलियां निकाली नहीं जातीं। फिर कलियां फूल बनती हैं, कलियों को फूल बनाया नहीं जाता। बाकी फिर सब होता है। हम सिर्फ अवसर जुटा देते हैं।

धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती, धर्म का बीज विकसित हो सके इसका शिक्षालयों में अवसर जुटाया जा सकता है। इसका अवसर जुटाया जा सकता है, इसकी हवा, इसका वातावरण जुटाया जा सकता है। जमीन

बनाई जा सकती है और मौका दिया जा सकता है, उसमें कुछ पैदा हो सकता है। इस अवसर जुटाने में कोई दो-तीन तत्व महत्वपूर्ण हो सकते हैं, उनकी मैं थोड़ी सी बात करूंगा।

पहला तत्व तो हैः साहस। अदम्य साहस चाहिए जिसे परमात्मा की खोज करनी हो। हिमालय चढ़ने में कोई बहुत बड़े साहस की जरूरत नहीं है। लेकिन परमात्मा तक जाने में बहुत बड़े साहस की जरूरत है। क्योंकि न तो उससे ऊंचा कोई बिंदु है और न उससे गहरा कोई बिंदु है। लेकिन आमतौर से जिनको हम धार्मिक लोग कहते हैं वे एकदम साहसहीन, बल्कि सच तो यह है कि जैसे-जैसे साहस कम होता है आदमी धार्मिक होता जाता है। बुढ़ापे के करीब आदमी धार्मिक होता है। जैसे-जैसे भय बढ़ने लगता है, मौत करीब आने लगती है, डर लगने लगता है, वैसे-वैसे धार्मिक होने लगता है। मंदिरों में जाइए, चर्चों में जाइए, वहां ऐसे लोग दिखाई पड़ेंगे जो या तो मर गए हैं या मरने के करीब हैं, वे इकट्ठे हैं। और अगर कोई जवान आदमी धर्म का विचार करे तो लोग उसको कहते हैं कि अभी तुम्हारी उम्र है? यानी धर्म की उम्र का मतलब? यानी जब आपकी उम्र न बचे तब धर्म की उम्र शुरू होती है, जब उम्र न बचे। जब एक पैर कब्र में चला जाए तब, तब प्रार्थना कर लेना। और यहां तक बात पहुंच गई है, जिन्होंने उस वक्त भी न कर पाई वे जब मर जाते हैं तो उनके कान में गीता वगैरह सुना देते हैं। जो नहीं कर पाए, दोनों ही पैर चले गए, तो उनको हम कान में सुना देते हैं मरने के बाद।

धर्म भय पर खड़ा नहीं हो सकता। लेकिन अभी भय पर खड़ा है। और इसीलिए दुनिया में कोई क्रांति नहीं हो सकी कि धार्मिकता पैदा हो सके। जो भयभीत है वह कभी धार्मिक नहीं हो सकता। क्योंकि भयभीत मन खोज करने में समर्थ नहीं रह जाता। अभय चाहिए, फीयरलेसनेस चाहिए, एकदम अभय चाहिए। यानी उस सीमा तक अभय चाहिए कि अगर परमात्मा को भी इनकार करना पड़े तो इनकार किया जा सके। उस सीमा तक, उस सीमा तक अभय चाहिए। इसलिए नास्तिकता को मैं आस्तिकता की पहली सीढ़ी कहता हूं। जो आदमी नास्तिक ही नहीं हो सकता वह कभी आस्तिक नहीं हो सकेगा, कभी आस्तिक नहीं हो सकेगा। नास्तिकता पहली सीढ़ी है। आस्तिकता उसके बाद ही हो सकती है। जो नास्तिक होने के पहले आस्तिक है उसकी आस्तिकता बिल्कुल झूठी होगी, बेजान, मुर्दा होगी।

साहस! और सबसे बड़ा साहस कौन सा है? सबसे बड़ा साहस है झूठे ज्ञान को अस्वीकार करने का साहस। अगर तुम्हें पता नहीं है कि ईश्वर है, तो कभी राजी मत होना मानने को कि ईश्वर है। अगर तुम राजी हो गए, फिर जान नहीं पाओगे। राजी मत होना अगर तुम्हें पता नहीं है, अगर तुम्हें पता नहीं है कि ईश्वर है, तो तुम कहना कि मुझे पता नहीं है कि ईश्वर है। चाहे कोई तुम्हें कितना ही झुकाए, चाहे प्रलोभन दे कि स्वर्ग जाओगे अगर ईश्वर को मानोगे, और चाहे भयभीत करे कि नरक भेज देंगे अगर ईश्वर को नहीं मानोगे, तो तुम नरक जाने को राजी हो जाना, स्वर्ग जाने की फिकर छोड़ देना, लेकिन कहना कि मैं अभी जानता नहीं हूं तो मैं अभी मानने को राजी नहीं हो सकता। इतना साहस न हो तो ईश्वर की खोज नहीं हो सकती, धर्म की खोज नहीं हो सकती।

भयभीत लोग क्या करेंगे? भयभीत लोग अपने भय के कारण ही कुछ भी मानने को राजी हो जाते हैं। कुछ भी मानने को राजी हो जाते हैं। सबके भीतर भय है मरने का कि कहीं मर न जाएं। इसलिए जो कौम मरने से जितनी ज्यादा डरती है वह कौम उतनी ही आत्मा की अमरता में विश्वास करने लगती है। हमारी कौम, यहां जितने मरने से डरने वाले लोग हैं जमीन पर और कहीं भी नहीं। तो यह कौम आत्मा की अमरता में खूब निष्ठा रखती है। क्यों? यह निष्ठा कोई आपके ज्ञान के कारण नहीं है, मरने का डर है कि कहीं मर न जाएं, तो कम से कम एक बात तो तय है कि आत्मा अमर है। शरीर मरेगा, मरेगा, हम थोड़े ही मरने वाले हैं, मैं तो बचूंगा। यह जो मरने का भय है यह आपकी आत्मा का विश्वास बना हुआ है। यह विश्वास बिल्कुल झूठा है। यह भय पर खड़ा हुआ है। इस विश्वास का कोई भी मूल्य नहीं है। यह विश्वास धार्मिक नहीं है। यह केवल भयभीत रुग्ण-चित्त की आस्था है, सुरक्षा है, सिक्योरिटी है, घबड़ाहट में पकड़ ली गई।

शिक्षा भय को अलग करे, साहस के लिए तैयार करे। पहली बात, अगर धार्मिक जीवन को जन्म देना है, अदम्य साहस पैदा करना पड़े, भय से मुक्त करना पड़े। अभी सारा धर्म भयभीत है, भय से ग्रसित है। सारी हमारी नैतिकता भय पर खड़ी है। चौरस्ते पर पुलिसवाला खड़ा हुआ है और सबसे बड़ा पुलिसवाला हमने परमात्मा खड़ा कर रखा है ऊपर। इधर पुलिसवाला डरवाए हुए है कि चोरी मत करना, उधर परमात्मा डरवाए हुए है कि चोरी मत करना। ये पुलिसवाले और परमात्मा में हमने एक आंतरिक संबंध बना रखा है। यह डरवाता है कि इधर सजा करवा देंगे, और अगर इससे बच गए तो उस बड़े पुलिसवाले से बच ही नहीं सकते, वह नरक भेज देगा। वह वहां आग में डालेगा और यह करेगा... । और इस भय पर जो नीति खड़ी होती है, जो धर्म खड़ा होता है, वह थोथा होता है, झूठा होता है। उसके प्राणों में कोई गति नहीं होती, उसके प्राणों में कोई बल नहीं होता।

तो स्मरण रखना, धर्म का पहला सूत्र हैः अभय। इसलिए भय के कारण किसी सिद्धांत को कभी अंगीकार मत करना, कभी स्वीकार मत करना। अच्छा है अज्ञान में मर जाना, लेकिन झूठे ज्ञान में जीना बहुत बुरा है। क्योंकि जो आदमी झूठे ज्ञान को स्वीकार कर लेता है उसका अज्ञान ढंक जाता है। अज्ञान मिटता नहीं है अज्ञान ढंक जाता है। और जब अज्ञान ढंक जाता है तो ज्ञान की खोज की प्रेरणा नष्ट हो जाती है, फिर कोई प्रेरणा नहीं रह जाती।

अगर मेरे पैर में फोड़ा है और मैं उसे ढांक लूं, तो मुझे दिखाई न पड़े, आपको दिखाई न पड़े, इससे फोड़ा समाप्त नहीं होता। बल्कि न दिखाई पड़ने से फोड़ा फिर अबाध्य गति करता है, निश्चिंत होकर गति करता है, फैलता है शरीर में। हमें पता नहीं है कि ईश्वर है, लेकिन हम माने बैठे हैं कि ईश्वर है, तो वह जो अज्ञान है उसको हमने छिपा लिया। छिपा हुआ अज्ञान खतरनाक है, वह बढ़ता जाएगा, फैलता जाएगा। और यह झूठा ज्ञान किसी काम का नहीं है, किसी काम का नहीं है। अज्ञान को स्वीकार करना अपने और झूठे ज्ञान को कभी स्वीकार मत करना। जो मनुष्य अपने अज्ञान को जानता है अज्ञान उसे चैन नहीं लेने देता, उसे धक्के देता है कि मिटाओ इसे, तोड़ो इसे, आगे बढ़ो और अपने अंधकार को तोड़ो। हम यहां बैठे हैं और हमें पता चल जाए कि मकान में आग लग गई, तो फिर किसी को समझाना पड़ेगा कि बाहर निकलो? उपदेश देने पड़ेंगे? भाषण करने पड़ेंगे यह समझाने के लिए कि बाहर निकलिए मकान में आग लगी है? नहीं, फिर न यहां उपदेशक पाया जाएगा, न सुनने वाले पाए जाएंगे, यहां कोई भी नहीं पाया जाएगा। उन दोनों की मुलाकात बाहर होगी, यहां नहीं होगी।

यह जो जीवन है हमारा इसका अज्ञान अगर हमें दिखाई पड़ने लगे, तो अज्ञान लपटों की भांति चारों तरफ अंधकार, अज्ञान अपने आप गति लाता है कि बाहर निकलो, इसके बाहर उठो। कोई अज्ञान से सहमत होने को राजी नहीं है। झूठे ज्ञान ने लोगों को सहमत बनने के लिए राजी बना दिया है। दुनिया में कोई अज्ञान को सहने को राजी नहीं है। लेकिन झूठे किताबी ज्ञान ने, उपदेशों ने लोगों को राजी बना दिया। अज्ञान को सहमत होने को तैयार कर दिया। हम अपने अज्ञान से सहमत हो जाते हैं।

हमारे इस अज्ञान को रोकने में उन लोगों ने सहायता पहुंचाई हैं जिन्होंने हमें ज्ञान सिखा दिया है। ज्ञान तो सिखाया भी नहीं जा सकता। अज्ञान तोड़ा जा सकता है, ज्ञान सिखाया नहीं जा सकता। और अज्ञान टूट जाने पर जो क्रांति घटित होती है वह ज्ञान है। अज्ञान मिट जाए, तो जो शेष रह जाता है वह ज्ञान है। तो तुम ज्ञान इकट्ठा करने की कोशिश मत करना धर्म के जगत में, विज्ञान के जगत में करना क्योंकि विज्ञान सिर्फ इनफॉर्मेशन है, विज्ञान कोई ज्ञान नहीं है, सिर्फ सूचना है। इसलिए तुम सूचना इकट्ठी करना विज्ञान के जगत में। विज्ञान हमेशा बाहर से सीखा जाएगा, क्योंकि वह सूचना है ज्ञान नहीं है। धर्म कभी बाहर से नहीं सीखा जा सकता, वह सूचना नहीं है, वह ज्ञान है। बाहर से जो भी सिखाया गया है उसे छोड़ देना है। तो शिक्षालय यह

कर सकते हैं कि बाहर से सिखाए गए धर्म से छुटकारा दिलवाएं। साहस पैदा करें, हिम्मत दें, अभय बनाएं और युवकों को कहें कि तुम खोजना और उनके अज्ञान का दर्शन कराएं कि तुम अज्ञान में हो।

खोजने के क्या सूत्र हो सकते हैं, मार्ग हो सकते हैं, वे उन्हें बताएं। खोजने का पहला सूत्र हैः अशांत चित्त कभी कुछ खोज नहीं सकता। अशांत चित्त कैसे खोजेगा? अशांत चित्त तो अपनी अशांति में इस भांति आबद्ध हो जाता है कि खोज असंभव हो जाती है। खोज के लिए चाहिए शांत चित्त। खोज के लिए चाहिए मौन चित्त। खोज के लिए चाहिए गहरी शांति। तो चित्त कैसे शांत हो? उसकी दिशा, चित्त कैसे मौन हो? उसकी दिशा, चित्त कैसे निर्विचार हो? उसकी दिशा, इसकी भूमिका शिक्षा में जुटाई जानी चाहिए। अभी तो हम जो कर रहे हैं वह उलटा कर रहे हैं। अभी तो हम मौन होना बिल्कुल भी नहीं सिखाते। अभी तो हम विचार से भरते हैं। और जितना जो व्यक्ति विचार से भर जाता है समझते हैं उतना ज्यादा शिक्षित हो गया। इसलिए आपको पता है, जिन मुल्कों में शिक्षा बढ़ती जाती है उन मुल्कों में पागलों की संख्या भी बढ़ती जाती है। क्योंकि अगर, अगर हम विचार ही विचार की शिक्षा दें और मौन की कोई शिक्षा न हो, तो विचार की अति जो तनाव पैदा करेगी, उससे विक्षिप्तता आएगी, उससे पागलपन आएगा। पश्चिम के तो बड़े विचारक, करीब-करीब सभी बड़े विचारक, बड़े कवि, बड़े चित्रकार बिना पागलखाने जाए बिना छूटते नहीं हैं। बल्कि अब तो मुझे ऐसा लगने लगा है, जो पागलखाने नहीं जाता वह थोड़ा मीडियाकर है, वह जीनियस नहीं है, वह प्रतिभाशाली नहीं है। छोटा-मोटा है इसलिए नहीं जाता, बच जाता है। लेकिन बड़ा विचारक तो जाता ही है।

सभ्यताएं जैसे-जैसे विकसित हुई हैं, पागलपन बढ़ा है। यह क्यों? यह विचार का अति टेंशन है। अति तनाव है। हम सिर्फ... एक आदमी को हम सिर्फ चलना, चलना सिखा दें और रुकना न सिखाएं, तो क्या होगा? पागल नहीं हो जाएगा? उसको चलना सिखाएं, रुकना न सिखाएं, ठहरना न सिखाएं, वह चलता रहे, चलता रहे, तो क्या होगा? तो क्या होगा? उसके पैर चलते ही रहें, चलते ही रहें, या तो पागल होगा या मर जाएगा, या थक कर बेहोश होकर गिर जाएगा। हम उसे विश्राम न सिखाएं तो क्या होगा? एक आदमी को हम जागना, जागना ही सिखाएं और सोना न सिखाएं, तो क्या होगा? तो हम विचार, विचार सिखाते हैं, निर्विचार बिल्कुल नहीं सिखाते, उसे मौन, साइलेंस बिल्कुल नहीं सिखाते, उसका परिणाम क्या होगा? यह विचार की अति मस्तिष्क को इतने तनाव से भर देगी कि उस तनाव का अंतिम परिणाम यही हो सकता है कि उसका मस्तिष्क टूट जाए, स्नायु जवाब दे दें, वह पागल हो जाए। यह हो रहा है। और डर तो यह है कि इतनी तीव्रता से हो रहा है कि पूरी सभ्यता के पागल हो जाने का डर है। पूरा डर है इस बात का कि कहीं पूरी मनुष्य-जाति एक साथ पागल न हो जाए। पता हमको बिल्कुल न चलेगा। पता इसलिए नहीं चलेगा कि हम भी उतने पागल, बगल वाला भी उतना पागल, इसलिए पता चलना बहुत कठिन होगा। अभी भी पता नहीं चलता। पता न चलने का कारण यह नहीं है कि अभी कोई हालत बहुत अच्छी है, पता न चलने का कारण है कि सबकी हालत एक जैसी है।

एक गांव में ऐसा हुआ एक बार, एक जादूगर आया और उसने आकर कुएं में कोई पुड़िया डाल दी। गांव में एक ही कुआं था। और उसने कहा कि इसका जो भी पानी पीएगा वह पागल हो जाएगा। गांव भर के लोगों को पानी पीना पड़ा, सिर्फ गांव का जो राजा था उसने नहीं पीया, उसके घर में एक कुआं और था। राजा-रानी और वजीर ने पानी नहीं पीया। लेकिन शाम तक गांव के लोगों को तो पानी पीना ही पड़ा, एक ही कुआं था गांव में। सारा गांव शाम होते-होते पागल हो गया। सारे गांव के लोगों ने सभा की और उन्होंने कहा, मालूम होता है बादशाह का दिमाग खराब हो गया है? क्योंकि बादशाह ने पानी नहीं पीया था उस कुएं का। तो वे गांव भर के लोग जब पागल हो गए तो उन्हें समझ में आया, बादशाह का दिमाग जरूर गड़बड़ हो गया है, क्योंकि हमारे जैसी बातें ही नहीं कर रहा। तो उन्होंने सभा की शाम को कि इस राजा को उतार देना चाहिए,

इसका दिमाग खराब हो गया है। किसी ठीक राजा को इसकी जगह बैठाना चाहिए। यह सब गड़बड़ कर देगा, सब डुबा देगा।

राजा बहुत घबड़ाया। महल के आस-पास जनता इकट्ठी हो गई। उसने अपने वजीर से कहा कि क्या करें? वजीर ने कहाः सिवाय एक रास्ता है कि उस कुएं का पानी हम भी पी लें। अगर थोड़ी देर हो गई फिर बचाव मुश्किल हो जाएगा। तो राजा ने जाकर उस कुएं का पानी पी लिया। और उस रात उस गांव में उत्सव मनाया गया कि राजा का दिमाग ठीक हो गया है।

करीब-करीब ऐसी हालत है। और इसीलिए तो जब हमारे बीच कोई एक ठीक दिमाग का आदमी पैदा होता है तो हम उसके साथ बड़ा उलटा व्यवहार करते हैं। क्राइस्ट पैदा होता है, सूली पर लटका देते हैं उसको। सुकरात पैदा होता है, जहर पिला देते हैं। गांधी पैदा होता है, गोली मार देते हैं। यह हमारा व्यवहार है ठीक मस्तिष्क के लोगों के साथ। यह आकस्मिक नहीं है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। हमारे दिमाग खराब हैं। तो शिक्षालय, विद्यापीठ विचार ही न सिखाएं, मौन सिखाएं, मौन की दिशा में अग्रसर करें, थोड़ी देर के लिए निर्विचार होना सिखाएं। मस्तिष्क का श्रम ही नहीं, मस्तिष्क का विश्राम भी। और बड़े मजे की बात है कि जीवन का जो भी गहरा अनुभव है वह जब मस्तिष्क विश्राम करता है तब उत्पन्न होता है। क्योंकि तब उस शांति में, उस मौन में ही वह जाना जाता है जो हमें घेरे हुए है। जो हमारे भीतर है और हमारे बाहर है। जीवन में जो भी शुभ है, सुंदर है और सत्य है वह मौन में है, एकांत में और शांति में ही जाना गया है। तो उस दिशा में हम गति दें। उस दिशा में जब गति मिलेगी, साहस और निर्भयता और खोज की अदम्य इच्छा, जिज्ञासा, संदेह अगर ये सारी बातें हम युवकों को दे सकें, तो धर्म की दिशा में उनकी आंखें उठनी शुरू हो जाएंगी। ऐसी स्थिति में ही धर्म और शिक्षा का संबंध हो सकता है।

मैं समझता हूं मेरी इन बातों को थोड़ा समझने का प्रयास करेंगे, क्योंकि मैं यह तो नहीं कह सकता कि मेरी बातें मान लें। क्योंकि अगर मैं यह कहूं तो मैं फिर पुराना धार्मिक हो गया। जो आपसे यह कहूं कि मेरी बातें मान लें, विश्वास कर लें मैंने जो कहा, जो भी आपसे यह कहता हो कि मेरी बातों का विश्वास कर लें, उसे शत्रु समझना, वह आपका मित्र नहीं है। जो भी आपसे कहता हो, मेरी बातों को मान लेना, वह खतरनाक है। तो मैं आपसे निवेदन करूंगा कि मैंने जो कहा, इस पर विचार करना, संदेह करना, इस पर सोचना, इस पर विचार करना; अगर इसमें से कोई चीज ठीक लगे वह इसलिए मत मानना कि किसी ने आपसे कही है, वह इसलिए मानना कि वह आपको ठीक लगी है। और उसको भी उस समय तक ही मानना जब तक ठीक लगे, और जिस क्षण भी वह गलत लगे उसे छोड़ने का साहस रखना, उसी वक्त छोड़ने का साहस रखना। इस भांति जो व्यक्ति विचार करता है, खोजता है, निर्णय लेता है उसके जीवन में विकास होता है, गति होती है। और यह बात असत्य है कि विश्वास और श्रद्धा से धर्म मिलता है, यह एकदम असत्य है। विचार, विवेक, शोध और अनुसंधान से धर्म मिलता है। और जिनको विश्वास से मिल जाता हो, तो वे काहिल और सुस्त लोग होंगे, जो खुद नहीं खोजना चाहते और किसी की बात को पकड़ कर निश्चिंत हो जाते हैं। वे भी बाजार जाते हैं, दो पैसे की हंडियां खरीदते हैं, तो उसको भी बजाते हैं, लेकिन परमात्मा को बिना बजाए स्वीकार कर लेते हैं। बेईमान हैं, आलसी हैं, सुस्त हैं, खुद खोज करने की श्रम से बचना चाहते हैं।

और स्मरण रखें, दूसरों की आंखों से कोई कभी भी नहीं देख सकता, अपनी आंख चाहिए। मेरी आंख से आप नहीं देख सकते, आपकी आंख से मैं नहीं देख सकता हूं। लेकिन उपदेशकों के हित में यही है, पुरोहितों के हित में यही है, वे कहें तुम्हें आंखों की क्या जरूरत है, हमारे पास आंखें हैं, हमारी आंखों से देख लो। उनके लिए हित में है, क्योंकि लोग जितना ज्यादा अंधे होंगे उतनी ही बड़ी भीड़ उनके पीछे खड़ी होगी। और लोग जितने भेड़ों की भांति होंगे उतना ही ज्यादा उनका अनुगमन होगा और शोषण होगा। धर्म मनुष्य को विवेक और तेजयुक्त बनाता है। और यह तथाकथित धर्म उसको विवेकहीन, तेजशून्य और भेड़ जैसा बना देते हैं।

एक अध्यापक ने मुझे कहाः उन्होंने अपने गांव के एक छोटे से स्कूल में बच्चों से पूछा कि एक बगिया के भीतर ग्यारह भेड़ें बंद हैं, अगर उनमें से पांच छलांग लगा कर बाहर निकल जाएं, पीछे कितनी बचेंगी? एक छोटे से बच्चे ने कहा कि बिल्कुल भी नहीं। उन्होंने कहाः तू कैसा पागल है? ग्यारह भेड़ें बंद हैं, पांच छलांग लगाएंगी, तो कितनी बचेंगी? तो उस बच्चे ने कहाः आप गणित जानते होंगे, मैं भेड़ों को जानता हूं, भेड़ें मेरे घर में हैं, एक भी नहीं बचेगी। क्योंकि जहां पांच गईं, वहां बाकी छह भी चली जाएंगी, पीछे कोई बचने वाली नहीं। उसने कहाः आप गणित जानते होंगे, मैं भेड़ों को जानता हूं। गणित का मुझे पता नहीं, लेकिन भेड़ एक न बचेगी पीछे।

ये सारे धर्मशास्त्री, धर्म-पुरोहित, यह हिंदू और मुसलमान और मंदिर और मस्जिद वाले लोग चाहते हैं, मनुष्य न हो दुनिया में, भेड़ें हों। राजनीतिज्ञ भी यही चाहते हैं कि भेड़ें हों, दुनिया के तथाकथित सभी तरह के नेता चाहे वे धर्म के नेता हों, चाहे वे राज्य के नेता हों, सभी चाहते हैं कि भेड़ें हों। क्योंकि भेड़ें अनुगमन करने में बड़ी कुशल होती हैं और कभी इनकार नहीं करतीं। ये जितने भी शोषण करने वाले लोग हैं, वे सभी यही चाहते हैं।

तो मैं आपसे निवेदन करूंगाः अगर धार्मिक बनना है तो भेड़ कभी मत बनना। किसी की भी भेड़ मत बनना। तो ही खुद का विवेक मुक्त होगा, खुद की आंख जगेगी। न तो किसी के अनुयायी बनने की जरूरत है और न किसी को अपना अनुयायी बनाने की जरूरत है। धर्म की खोज एक-एक मनुष्य की वैयक्तिक खोज है। कोई सामुहिक उपक्रम नहीं है। प्रेम मैं अकेला करता हूं, न किसी का अनुगमन करता हूं, न किसी को नेता मानता हूं। प्रार्थना भी मैं अकेला ही करूंगा, परमात्मा भी मैं अकेला ही खोजूंगा। इतने साहस से, इतनी हिम्मत से, इतने आत्म-विश्वास से जो गति करता है, वह एक दिन जरूर उसको पा लेता है जो पा लेने जैसा है। उसे कैसे हम पा सकते हैं, उसके संबंध में कुछ और मैं संध्या बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बेठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

चित्त को बदलने की कीमिया

मैं अत्यंत आनंदित हूं कि आपसे संध्या अपने हृदय की थोड़ी सी बातें कर सकूंगा। अभी कहा गया कि यह समय अंधकारपूर्ण है और यह युग पतन का, भौतिकवाद का और मैटीरियलिज्म का है।

सबसे पहले मैं आपको निवेदन कर दूं, यह बात अत्यंत गलत है, यह बात झूठी है। इस बात से यह भ्रम पैदा होता है कि पहले के लोग प्रकाशपूर्ण थे और आज के लोग अंधकारपूर्ण हैं। इससे यह भ्रम पैदा होता है कि पहले के लोग अंधकार में नहीं थे और हम अंधकार में हैं। इस भ्रम के पैदा हो जाने के कुछ कारण हैं। लेकिन यह बात सच नहीं है। हम अनैतिक हैं, इम्मारल हैं और पहले के लोग नैतिक थे, यह बात भी ठीक नहीं है।

अगर पहले के लोग नैतिक थे तो महावीर ने किसको समझाया कि हिंसा मत करो, चोरी मत करो, असत्य मत बोलो? बुद्ध ने किसको उपदेश दिए? राम और कृष्ण किन लोगों को समझा रहे थे अच्छा होने के लिए? अगर लोग अच्छे थे तो ये उपदेश व्यर्थ थे, झूठे थे, इनकी कोई जरूरत न थी। ये दुनिया में, पुरानी सदियों में इतने-इतने बड़े शिक्षक हुए ये क्यों पैदा हुए?

जहां अंधेरा होता है वहां दीयों की जरूरत पड़ती है। जहां भूलें होती हैं वहां शिक्षक पैदा होते हैं। जहां गलतियां होती हैं वहां सुधारक का जन्म होता है। अगर पिछली सदियों में इतने बड़े सुधारक दुनिया में पैदा हुए, यह किस बात का सबूत है? यह इस बात का सबूत है उस दिन के लोग भी हमारे जैसे लोग थे जैसे हम हैं वैसे वे लोग थे। वे भी चोरी करते थे और वे भी बेईमान थे और वे भी हिंसा करते थे और युद्ध करते थे। अगर वे बेईमान नहीं थे तो ईमानदारी की शिक्षाएं किसके लिए थीं? अगर वे चोर नहीं थे तो चोरी न करने की बातें किसको समझाई जा रही थीं? वे हम जैसे ही लोग थे, आदमी में कोई फर्क नहीं पड़ा है।

तो मैं आपसे कहना चाहूंगा, यह सदी अंधकार में है, इससे यह मतलब न लें कि पहले के लोग प्रकाश में थे। आदमी आज तक अंधकार में ही रहा है। यह भ्रम इसलिए पैदा होता है कि पहले के लोग अच्छे थे। इसके भ्रम के पैदा होने के पीछे कोई कारण है। वह यह है, हम सारे लोग अभी जमीन पर हैं, हजार साल बाद हमारी याद करने वाला कौन होगा? कोई भी नहीं। लेकिन गांधी याद रह जाएंगे, हम सारे लोगों के नाम भूल जाएंगे, हम सारे लोगों के कृत्य, हमारी नीति-अनीति सब भूल जाएगा, एक गांधी याद रह जाएगा हमारे बीच से। और हजार साल बाद लोग सोचेंगे कि गांधी इतना अच्छा आदमी था तो उस जमाने के सारे लोग अच्छे रहे होंगे।

आपको पता है बुद्ध के समय में कौन सा आदमी जमीन पर था? कौन सा आदमी सड़कों पर चल रहा था? कौन सा गांवों में रह रहा था? आपको पता है कि राम के वक्त में कौन लोग थे? आपको पता है कृष्ण के वक्त में कौन लोग थे? सामान्य आदमी की कोई कथा बाकी नहीं रह जाती, जो कि असली आदमी है। थोड़े से अपवाद, थोड़े से एक्सेप्शंस याद रह जाते हैं। और उनकी याददाश्त पर हम निर्णय करते हैं कि पहले के लोग अच्छे रहे होंगे। बुद्ध अच्छे थे, महावीर अच्छे थे, तो गांधी अच्छे थे, तो हम अच्छे हैं। बल्कि सच्चाई यह है कि अगर सारे लोग अच्छे हो जाएं तो गांधी को याद रखने की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। अगर महावीर के समय के सारे लोग अच्छे होते तो महावीर का नाम हम कभी का भूल गए होते। वह उस पूरे अंधेरे में एक आदमी चमकता हुआ था इसलिए दिखाई पड़ रहा है आज तक। अगर सारे लोग चमकते हुए होते, वे महावीर कभी के भूल जाते, वे कृष्ण भी कभी के भूल जाते। ये दस-पंद्रह लोगों के नाम हमें याद हैं, केवल इसलिए कि इस पूरी अंधेरी रात में ये दस-पांच चमकते हुए सितारे थे।

लेकिन आदमी की जिंदगी आज तक जमीन पर अंधेरे से भरी रही है। पंद्रह हजार युद्ध लड़े गए हैं पांच हजार वर्षों में। पंद्रह हजार युद्ध किन लोगों ने लड़े? अगर वे अच्छे लोग थे कौन लड़ रहा था? हिंदुस्तान की

जमीन पर बुद्ध के समय में दो हजार राज्य थे। और हर रोज इस जमीन पर लड़ाई हो रही थी। कौन लड़ रहा था वह लड़ाई? और लड़ाई प्रेम से लड़ी जाती है? ईमानदारी से? लड़ाइयां कैसे लड़ी जाती हैं?

महाभारत हुआ हमारे इस मुल्क में, जिनको हम बहुत अच्छे लोग कहते थे वे भी अपनी औरत को जुए पर दांव में लगा सकते थे। कैसे अच्छे लोग रहे होंगे? और अच्छे लोग थे तो जमीन के लिए लड़े? सारे मुल्क को शायद दो-चार हजार वर्ष के लिए रीढ़ तोड़ दी। जुआ खेलते थे, औरत को दांव पर लगा सकते थे। अच्छे लोग थे।

बात असल यह है कि अतीत तो हमें भूल जाता है और वर्तमान हमें दिखाई पड़ता है। आप कहते हैं, पीछे के लोग अच्छे थे और आज के लोग अंधेरे में हैं। आज तक जमीन पर जितनी किताबें लिखी गई हैं, पुरानी से पुरानी किताब भी यही कहती है कि पहले के लोग अच्छे थे। वे पहले के लोग कब थे? आपने कोई ऐसी किताब पढ़ी है जो यह कहती हो आज के लोग अच्छे हैं?

चीन में सबसे पुरानी किताब है छह हजार वर्ष पुरानी, वह भी कहती है कि पहले के लोग बहुत अच्छे थे, आज के लोग बिल्कुल बिगड़ गए हैं, यह जमाना अंधकार का आ गया है। छह हजार वर्ष पुरानी किताब भी यही कहती है कि पहले के लोग अच्छे थे और आज का जमाना अंधकार का है। अगर आप उस किताब को पढ़ें तो ऐसा लगेगा हमारे जमाने के बाबत कह रहे हैं ये लोग।

नहीं, इसमें कोई बुनियादी भ्रम है। पहले के लोग अच्छे कहने का कारण यह नहीं है कि पहले के लोग अच्छे थे, लेकिन आज के आदमी को कंडेम्ड करना हो, उसकी निंदा करनी हो, तो इसके सिवाय कोई उपाय नहीं कि हम पहले के आदमी को अच्छा कहें और इसको नीचा दिखाएं। इसको नीचा दिखाने की हमारी बड़ी इच्छा है। जो हमारे साथ आदमी खड़ा है उसे नीचा दिखाने की इच्छा है। इसको कैसे नीचा दिखाएं? इसको नीचा दिखाने का एक रास्ता है कि पहले के लोग बहुत अच्छे थे।

अगर पहले के लोग अच्छे थे तो ये बुरे लोग उन अच्छे लोगों से कैसे पैदा हो गए? अगर पहले की संस्कृति और सभ्यता अच्छी थी तो यह दुष्परिणाम कैसे आया? यह उसी का तो फल है, यह उसी का तो कांसिक्वेंस है, यह उसी में से तो निकला है। यह जो कुछ निकला है उससे ही पैदा हुआ है।

मैं क्या कहना चाहता हूं यह बात कह कर, मैं यह बात कह कर यह कहना चाहता हूं कि यह सवाल किसी युग का नहीं है कि आदमी अंधकार में है, यह आदमी का चित्त जैसा है अभी और आज तक जैसा रहा है, उस चित्त से यह अंधकार पैदा हो रहा है। यह किसी युग की भूल नहीं है। यह आदमी का चित्त जैसा है उसका परिणाम है। और जब तक हम आदमी के चित्त को बदलने की कीमिया, तरकीब उसको बदलने की विधि नहीं समझ लेते हैं और जब तक हम बहुत बड़े पैमाने पर आदमी की चेतना को बदलने का उपाय नहीं करते हैं तब तक जमीन पर अंधकार रहेगा। यह किसी युग का सवाल नहीं है। यह सतयुग और कलियुग का सवाल नहीं है। यह सवाल आदमी के मन का है। और आदमी का मन वही है जो पांच हजार साल पहले था, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ा। यह आदमी का मन क्या है जो अंधकार ले आता है? और इधर पांच हजार सालों में हमने कोशिश की इसको बदलने की, वह कोशिश असफल क्यों हो गई?

और हम आज भी वही दोहराते हैं। इस आदमी को बदलना है तो उन्हीं बातों को दोहराते हैं जो पांच हजार साल में नाकामयाब साबित हो गईं। फिर भी उन्हीं बातों को दोहराते हैं। तो यह जमाना आगे भी अंधकारपूर्ण रहेगा अगर उन्हीं बातों को हम दोहराए चले गए। वे कौन सी बातें हैं जिनकी वजह से आदमी का चित्त नहीं बदल सका? कौन सा कारण है जिसकी वजह से आदमी वहीं-वहीं चक्कर काट रहा है जैसे कोल्हू का बैल चक्कर काटता हो? जमाने गुजर जाते हैं, सदियां गुजर जाती हैं, आदमी वही का वही है।

कौन सी बातें हैं? उनमे से एक बात सबसे शुरू में आपसे कहूं। निरंतर हमसे कहा जाता है कि आदमी को नैतिक होना चाहिए, मॉरल होना चाहिए। यह शिक्षा बहुत पुरानी है, यह कोई आज तो नहीं कहा जा रहा है,

यह हमेशा से कहा जा रहा है। फिर आदमी नैतिक क्यों नहीं हो गया? तो हम दोष देते हैं कि आदमी की कोई गलती है इसलिए नैतिक नहीं हो गया।

मैं आपसे कहना चाहता हूं कि कोई आदमी नैतिक हो ही नहीं सकता बिना धार्मिक हुए। और धार्मिक होना बड़ी दूसरी बात है। कोई आदमी नैतिक नहीं हो सकता बिना धार्मिक हुए। लेकिन हमको तो बताया जाता रहा है कि नैतिक हो जाइए तो फिर आप धार्मिक हो सकते हैं। बिना नैतिक हुए धार्मिक नहीं हो सकते, यह बात बिल्कुल ही उलटी और गलत है। नैतिकता धार्मिक मनुष्य की सुगंध है।

भीतर चित्त में धर्म हो तो जीवन में होती है नीति। अंतःकरण परिवर्तित हो जाए तो आचरण हो जाता है दूसरा। नीति का संबंध है आचरण से, धर्म का संबंध है अंतःकरण से। लेकिन पांच हजार वर्षों से हम कह रहे हैं आदमी को नैतिक बन जाने को। और बिना अंतःकरण बदले हुए जो आदमी अपने आचरण को बदल लेता है वह नैतिक तो नहीं होता, विकृत जरूर हो जाता है।

क्या मतलब मेरा यह कहने का? मेरा कहने का यह मतलब है कि जो आदमी अपने जीवन को नैतिक बनाने में लगता है वह क्या करेगा? अगर उसके भीतर सेक्स है, काम है, जो कि होना चाहिए, और है, उसके जीवन का स्वभाव का हिस्सा है, तो वह क्या करेगा नैतिक बनने को? वह आदमी ब्रह्मचर्य की कसमें लेगा नैतिक बनने को। ब्रह्मचर्य की कसमों से क्या होने वाला है? इतना ही होने वाला है कि वह आदमी अपने सेक्स को भीतर दबाए चला जाएगा, दबाए चला जाएगा। ऊपर से ब्रह्मचर्य को ओढ़ लेगा और भीतर सेक्स को दबा लेगा, सप्रेस कर लेगा। वह दबी हुई कामुकता, वह दबा हुआ सेक्स नष्ट नहीं होगा, उसके भीतर उसके अचेतन मन की पर्तों में घूमने लगेगा, रात सपनों में आने लगेगा, कमजोर क्षणों में प्रकट होने लगेगा। वह उसके भीतर निरंतर मौजूद रहेगा और उसकी मौजूदगी उसको भयभीत कर देगी। वह घबड़ाया हुआ रहने लगेगा। उसको कहीं अगर स्त्री दिख जाए, तो वह घबड़ाएगा, वह आंख बंद कर लेगा, वह दूर भागेगा, जंगलों में जाएगा, बस्तियां छोड़ेगा, क्योंकि भीतर भय है कि कहीं उसका ब्रह्मचर्य न टूट जाए। और ब्रह्मचर्य टूट जाने का भय क्यों है? भय है कि भीतर सेक्स की लहरें धक्के दे रही हैं, उनको वह ऊपर से दबाए हुए बैठा हुआ है।

एक छोटी सी कहानी कहूं उससे मेरी बात समझ में आए और मैं आगे बढ़ सकूं।

एक छोटी सी पहाड़ी नदी को दो भिक्षु पार कर रहे थे। एक वृद्ध भिक्षु था और एक युवा। वृद्ध भिक्षु जैसे ही नदी के किनारे आया उसने देखा कि सांझ होने को है, सूरज ढलने को है, पहाड़ी नदी है, और एक युवती नदी के किनारे खड़ी है, संभवतः उसे नदी पार होना है। लेकिन अकेले नदी में उतरने का साहस नहीं कर पा रही है। सहज ही उसके मन को ख्याल हुआ, इसे हाथ का सहारा दे दूं और नदी पार करा दूं। लेकिन तीस वर्ष से उसने किसी स्त्री को छुआ नहीं था। यह ख्याल आते ही कि मैं हाथ का सहारा देकर नदी पार करा दूं, वह हैरान हो गया! तीस साल से सोचता था कि जिस काम के ऊपर उसने वश पा लिया, जिस सेक्स को उसने जीत लिया, वह अत्यंत तीव्रता से उसके भीतर खड़ा हो गया। वह घबड़ाया, उसके हाथ-पैर कंप गए। अभी उसने उस स्त्री को छुआ नहीं था। उसने आंखें झुका लीं और वह नदी पार करने लगा और वह भगवान का नाम जपने लगा और सोचने लगा मैं भी कैसा नासमझ हूं, मैंने यह व्यर्थ की बात क्यों सोची? लेकिन दोनों बातें आने लगी मन में--एक तरफ से ख्याल आने लगा उसे पार मैं करा ही देता तो क्या हर्ज था, और उसके पार कराने के साथ न मालूम कितना रस, और न मालूम कितनी कामनाएं उसके मन में उठने लगीं, और कितने सपने उसके मन में उठने लगे। आंख तो उसने मोड़ ली थी, लेकिन आंख मोड़ने से कहीं कुछ होता है? वह स्त्री इतनी सुंदर न थी जितनी आंख मोड़ने से और सुंदर मालूम होने लगी। आंख उसने बंद कर ली थी, वह राम जप रहा था और नदी पार हो रहा था, लेकिन भीतर कोई राम नहीं थे, वही स्त्री खड़ी थी और बहुत सुंदर होकर खड़ी हो गई थी।

बंद आंखों में चीजें और सुंदर हो आती हैं। खुली आंखों से चीजें इतनी सुंदर कभी भी नहीं हैं। क्योंकि बंद आंखों में चीजें पार्थिव नहीं रह जातीं, अपार्थिव हो जाती हैं, सपना बन जाती हैं।

वह बहुत घबड़ाया और बहुत बेचैन हुआ। अपनी बहुत निंदा उसने की कि मैंने यह सोचा ही क्यों? प्रायश्चित करूंगा, दुखी होऊंगा। तीस वर्ष से जिसे मैंने छोड़ रखा था, अलग कर रखा था, वह मौजूद था, अलग तो हुआ नहीं था।

वह नदी पार हो गया। लेकिन नदी पार होते ही उसे ख्याल आया कि जो भूल मैंने की है कहीं मेरा युवा साथी भी वही भूल तो नहीं कर रहा? वह उसके थोड़े पीछे आने को था। उसने लौट कर देखा, वह हैरान रह गया! वह युवा लड़का उस लड़की को अपने कंधे पर बिठा कर नदी पार कर रहा था।

उसे कई तरह के भाव एक साथ उठ आए। कहीं ईर्ष्या भी आ गई होगी, क्योंकि वह चूक गया था इस सुख को उठाने से, वह वंचित रह गया था इस आनंद से। और तब निंदा भी आई, और तब उसने सोचा कि आज जाकर गुरु को कहेंगे, और यह तो बात बहुत गलत है, यह तो पापपूर्ण है कि संन्यासी और युवा युवती को कंधे पर उठाए। वह गुस्से में चल पड़ा। कोई दो मील के बाद उनका आश्रम था। थोड़ी देर बाद जब वे आश्रम पहुंच गए, तो वह बूढ़ा सीढ़ियों पर खड़ा था, पीछे से आते युवक को उसने कहा कि सुनो, यह बात बरदाश्त के बाहर है, यह निहायत पाप है कि तुम लड़की को कंधे पर उठाओ। और मैं असत्य न बोल सकूंगा, मुझे गुरु से कहना पड़ेगा कि यह बात मेरी आंखों के सामने हुई है और यह हमारे आश्रम-जीवन के विरुद्ध है। हमने ब्रह्मचर्य की कसम ली है और तुमने युवती को छुआ। न केवल छुआ बल्कि कंधे पर उठाया। वह युवक हंसने लगा और उसने कहा कि वृद्ध भिक्षु, मैं तो उस युवती को नदी के किनारे उतार भी आया कंधे से, लेकिन आप अभी भी लिए हुए हैं!

दमित, सप्रेस्ड माइंड चीजों को सिर पर तो नहीं लेता, लेकिन फिर भी वे उसके सिर पर चढ़ जाती हैं और जीवन भर उसके साथ चलती हैं। उन्हें उतारना कठिन हो जाता है। क्योंकि जिसे हम दबाते हैं वह नष्ट नहीं होता, वह हमारे भीतर छिप जाता है। हम जितना दबाते हैं वह हमारे भीतर और ज्यादा गहरे छिप जाता है। हम सत्य बोलने का व्रत लेते हैं और भीतर असत्य छिप कर बैठ जाता है। हम ईमानदार होने की कसम खाते हैं और भीतर बेईमानी धक्के देती है। मनुष्य दो हिस्सों में टूट जाता है। एक जैसा वह दिखाई पड़ता है और एक जैसा वह है। और यह जीवन भर का संघर्ष, यह जीवन भर की पीड़ा नरक बना देती है।

अब इसमें दो ही रास्ते हैं। अगर वह आदमी बहुत चालाक है, समझदार है, तो एक रास्ता पाखंड है। और वह रास्ता यह है कि वह ऊपर से तो जो दिखाई पड़ता है दिखता रहे और भीतर जो है छिपे रास्तों से उसकी तृप्ति का भी मार्ग खोज ले। एक रास्ता तो यह है। और इसीलिए नैतिक शिक्षा का अनिवार्य परिणाम पाखंड हुआ है। सारी दुनिया और मनुष्य-जाति पाखंडी हो गई है। उसको पाखंडी बनाने में नैतिक शिक्षा का हाथ है। जो यह सिखाती है कि सच बोलो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो, क्रोध मत करो, वासना मत लाओ। जो हर चीज में इनकार सिखाती है, उसका परिणाम यह होगा कि आदमी दमन करेगा और दमन इतना परेशान कर देगा उसे कि वह छिपे रास्तों से प्रवेश करना चाहेगा। पाखंड पैदा होगा। और वह अगर जिद्दी हुआ और पाखंडी नहीं बना तो दूसरा विकल्प है कि वह पागल हो जाएगा। क्योंकि इतना टेंशन और इतना तनाव झेलना कठिन है। उस तनाव में, चिंता में, संताप में, वह टूट जाएगा और विक्षिप्त हो जाएगा।

इसलिए सभ्यता के विकास के साथ दो तरह की बातें विकसित हुई हैं--पाखंड और पागलपन। क्या आपको पता है जितने हम सभ्य होते गए हैं उतनी ही हमारी संख्या पागलों की बढ़ती चली गई है? क्या आपको पता है जितने हम शिक्षित होते गए हैं उतने ही हमें पागलखाने बढ़ाने पड़ रहे हैं? क्या आपको पता है कि जो हमारी जमीन पर सबसे ज्यादा शिक्षित और सभ्य मुल्क है वही मुल्क सर्वाधिक मानसिक रोगों से भी पीड़ित है?

अमरीका में प्रतिदिन कोई पंद्रह लाख से तीस लाख तक लोग अपनी मानसिक चिकित्सा के लिए सलाह ले रहे हैं। ये सरकारी आंकड़े हैं। और सरकारी आंकड़े कभी सच नहीं होते। इससे ज्यादा लोग वहां खराब हालत में हैं। मानसिक चिकित्सकों की संख्या अमरीका में एकदम तीव्रता से बढ़ती चली जाती है। अमरीका सबसे ज्यादा सभ्य मुल्क है इसका यह सबूत है। और कल जब आप भी सभ्य हो जाएंगे तो आपको भी पागलों की

संख्या इतनी ही बढ़ानी पड़ेगी। क्योंकि बिना पागल हुए कोई सभ्य नहीं हो सकता। वह मुल्क पूरी तरह सभ्य कहा जाएगा जिस मुल्क के सारे लोग पागल हो जाएं। वहां सभ्यता चरम उत्कर्ष पर पहुंच गई।

क्योंकि सभ्यता सिखाती है नैतिकता, और नैतिकता से पैदा होता है तनाव, द्वंद और कांफ्लिक्ट। वह चित्त को बांट देती है, खंड-खंड कर देती है, वह खंड-खंड चित्त बड़ी बेचैनी में पड़ जाता है। तो एक रास्ता तो है कि वह पागल हो जाए, पागल होकर आत्मघात कर ले। आत्महत्या की संख्या भी सभ्यता के साथ बढ़ती है। दूसरा उपाय है कि वह बेईमान हो जाए और धोखा देने लगे, बाहर से कुछ दिखाई पड़े भीतर से कुछ और हो जाए।

पीछे लंदन में शेक्सपीयर का एक नाटक चलता था। इंगलैंड के चर्च का एक बहुत बड़ा पादरी भी उस नाटक को देखने को उत्सुक था। लेकिन पादरी और नाटक देखने जाए, यह जरा अशोभन। क्योंकि यही पादरी तो समझाता रहा है कि नाटक देखना पाप है। अब यही कैसे उस नाटक को देखने जाए। लेकिन मन में उसके बड़ा लगाव था, तो उसने नाटक के मैनेजर को एक पत्र लिखा और उस पत्र में लिखा कि मेरे मित्र, बड़ी कृपा होगी, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जब भवन में अंधेरा हो जाता है तो पीछे के द्वार से मुझे भी भीतर आ जाने दिया जाए? नाटक मैं देखना चाहता हूं लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि लोग मुझे देखें। कोई पीछे का दरवाजा नहीं है आपके नाटक-गृह में? उस थियेटर के मैनेजर ने लिखा कि पीछे का दरवाजा है। और अक्सर हमें पादरियों के लिए उससे आने की व्यवस्था करनी होती है। लेकिन एक बात मैं हमेशा बता देना पहले ही उचित समझता हूं, ऐसा दरवाजा तो है हमारे नाटक-गृह में कि आप उससे आएं और लोग आपको न देख सकें, लेकिन ऐसा कोई दरवाजा नहीं है जिसको परमात्मा न देखता हो। यह ख्याल में रखें, और बराबर आ जाएं।

मुझे पता नहीं कि वह पादरी देखने गया या नहीं। लेकिन पीछे के दरवाजे खोजने की इच्छा पैदा होती है। ऊपर से नैतिकता ओढ़ लेते हैं फिर पीछे का दरवाजा खोजना पड़ता है। इससे पाखंड पैदा होता है, इससे धोखा पैदा होता है। और इस धोखे से मनुष्य के जीवन में जो भी श्रेष्ठतम है उसकी खोज असंभव हो जाती है। वह न केवल दूसरों को धोखा देता है बल्कि खुद को भी धोखा देने लगता है। यह है नैतिकता की शिक्षा, जिसके ये परिणाम हैं।

क्या मैं यह कह रहा हूं कि आप अनैतिक हो जाएं? क्या मैं यह कह रहा हूं कि आप अपनी सारी नैतिकता छोड़ दें? क्या मैं यह कह रहा हूं कि क्रोध करें? क्या मैं यह कह रहा हूं असत्य बोलें? नहीं, मैं यह कह रहा हूं कि क्रोध और असत्य और लोभ और सब कुछ जिसको हम अनैतिक कहते हैं और निंदा करते हैं, ये सिर्फ लक्षण हैं बीमारी के, यह खुद बीमारी नहीं है। इन लक्षणों से जो लड़ेगा वह बीमारी से मुक्त नहीं हो सकता।

एक आदमी को बुखार है उसके हाथ-पैर गरम हैं, तो उसके हाथ-पैर हम ठंडे करने में लग जाएं और हम सोचें की गरमी है तो हाथ-पैर इसके ठंडे कर दें। तो शायद हम मरीज को मार ही डालेंगे। बुखार गरमी का नाम नहीं है, गरमी तो केवल खबर है कि भीतर कोई बीमारी है और शरीर को उस बीमारी से लड़ना पड़ रहा है, इसलिए शरीर गरम हो गया। गरमी तो लक्षण है बीमारी का, गरमी से नहीं लड़ना है। गरमी तो मित्र है, खबर दे रही है। वह तो अगर शरीर गरम न हो और भीतर बीमारी रहे तो आदमी मर ही जाएगा उसका पता भी नहीं चलेगा। शरीर जल्दी से खबर देता है गरम होकर कि भीतर कुछ गड़बड़ हो गई है, उसे ठीक करो। लेकिन जो गरमी को ठीक करने में लग जाएगा, वह भूल में पड़ गया।

एक आदमी मेरे पास भागा हुआ आए कि मेरी मां बीमार है और मैं उसी का इलाज करने लगूं। तो उसकी मां तो मरेगी ही यह आदमी भी मरेगा। यह तो केवल खबर देने आया था, यह खुद बीमार नहीं था।

क्रोध इस बात की खबर है कि भीतर आत्मा अंधकार में है, बीमार है, अस्वस्थ है। बेईमानी, असत्य, इस बात की खबर है कि भीतर प्राण स्वस्थ नहीं है। ये सारी खबरें हैं, ये लक्षण हैं, यह बीमारी नहीं है, बीमारी कुछ और है। बीमारी दूसरी ही है और बीमारी एक ही है। और वह बीमारी है आत्म-अज्ञान। स्वयं के भीतर जो

चेतना है उसको न जानना, उसको न पहचानना। वह जो सेल्फ इग्नोरेंस है वही है बीमारी, बाकी सब उससे पैदा होने वाले लक्षण हैं।

नीति इन लक्षणों का इलाज करती है। इसलिए नीति कोई उपाय नहीं है। धर्म उस आत्मा में जो अस्वास्थ्य है, वह जो आत्मा का अज्ञान है, उससे मुक्त करता है। और उससे मुक्त होते ही ये लक्षण एकदम विलीन हो जाते हैं, ये समाप्त हो जाते हैं।

जैसे ही भीतर कोई स्वयं को जानने में समर्थ होता है वैसे ही वह हंसेगा, हैरान हो जाएगा कि मैं क्रोध भी करता था। उसे आप मजबूर करें क्रोध करने को, तो भी वह क्रोध न कर सकेगा। उसे आप झूठ बोलने को कहें, तो वह न बोल सकेगा। क्योंकि अब वह जानता है और अब वह समझता है, क्रोध क्या था और कैसे हुआ था? स्वस्थ आदमी से आप कहें कि जरा फीवर लाकर दिखाओ, तो वह न ला सकेगा। क्योंकि फीवर लाना स्वस्थ आदमी के हाथ के बस की बात नहीं है। बुखार ले आना उसके हाथ की बस की बात नहीं है, बीमारी थी तो बुखार था।

बुद्ध एक बार एक गांव के पास से निकलते थे। उस गांव के लोग उनके शत्रु थे। हमेशा ही जो भले लोग हैं उनके हम शत्रु रहे हैं। उस गांव के लोग भी हमारे जैसे लोग होंगे, तो वे बुद्ध के शत्रु थे। बुद्ध उस गांव से निकले, तो उन गांव के लोगों ने रास्ते पर उन्हें घेर लिया और उन्हें बहुत गालियां दीं और बहुत अपमान किया, बहुत अपशब्द बोले। बुद्ध ने सुना और बुद्ध ने फिर उनसे कहाः मेरे मित्रो, तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। वे लोग थोड़े हैरान हुए होंगे। और उन्होंने कहा कि हमने क्या कोई बातें कही हैं, हमने तो गालियां दी हैं सीधी और स्पष्ट? बुद्ध ने कहाः तुमने थोड़ी देर कर दी। अगर तुम दस वर्ष पहले आए होते तो मजा आ गया होता। हम भी तुम्हें गाली देते, हम भी क्रोधित होते, थोड़ा रस आता, बातचीत होती, तुम थोड़ी देर करके आए हो। अब मैं उस जगह हूं कि तुम्हारी गाली लेने में असमर्थ हूं। तुमने गाली दी, वह तो ठीक, लेकिन तुम्हारे देने से ही क्या होता है, मुझे भी तो भागीदार होना चाहिए। मैं उसे लूं तभी तो उसका परिणाम हो सकता है। लेकिन मैं तुम्हारी गाली लेता नहीं, क्योंकि कोई पागल ही गाली ले सकता है, कोई समझदार गाली कैसे लेगा? मैं दूसरे गांव से निकला था, वहां के लोग मिठाइयां लाए थे भेंट करने, मैंने उनसे कहा कि मेरा पेट भरा है, तो वे मिठाइयां वापस ले गए। जब मैं न लूंगा तो वे मुझे कैसे दे जाएंगे? बुद्ध ने उन लोगों से पूछा कि वे लोग मिठाइयां वापस ले गए, उन्होंने क्या किया होगा? एक आदमी ने भीड़ में से कहा कि उन्होंने अपने बच्चों को दी होंगी, परिवार में दे दी होंगी।

बुद्ध ने कहाः मित्रो, अब तुम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। तुम गालियां लाए हो, मैं लेता नहीं, अब तुम क्या करोगे? घर ले जाओगे, बांटोगे? मुझे तुम पर बड़ी दया आती है, अब तुम इन गालियों का क्या करोगे? क्योंकि मैं लेता नहीं। क्योंकि जिसकी आंख खुली है वह गाली लेगा? और जब मैं लेता ही नहीं तो क्रोध का सवाल ही नहीं उठता। जब मैं ले लूं तब क्रोध उठ सकता है। आंखें रहते हुए मैं कैसे कांटों पर चलूं? और आंखें रहते हुए मैं कैसे गालियां लूं? और होश रहते मैं कैसे क्रोधित हो जाऊं? मैं बड़ी मुश्किल में हूं। मुझे क्षमा कर दो। तुम गलत आदमी के पास आ गए। मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव जाना है, जल्दी पहुंचना है।

उस गांव के लोग कैसे निराश नहीं हो गए होंगे? कैसे उदास नहीं हो गए होंगे? बुद्ध ने क्या कहा? यह बुद्ध ने क्रोध को दबाया नहीं है। यह बुद्ध भीतर जाग गया है इसलिए क्रोध अब नहीं है।

भीतर आत्मा जाने और जागे तो नीति तो वैसे ही चली आती है जैसे आदमी के पीछे छाया आती है। आदमी के पीछे छाया आती है वैसे ही नैतिकता धर्म के पीछे आती है अपने आप, अनिवार्य। वह तो अपरिहार्य है, वह तो आएगी, उसे लाने का कोई सवाल नहीं है।

इधर हम हजारों वर्ष से आदमी को नैतिक बनाने के लिए समझा रहे हैं इसलिए नैतिकता नहीं आ पाई। आया है पाखंड, आया है पागलपन। नैतिकता धर्म तक नहीं ले जाती लेकिन धर्म जरूर नैतिकता को ले आता है। धर्म की सुगंध है नीति। अनिवार्य सुगंध है। भीतर धर्म का फूल खिलता है; जीवन और आचरण में सुगंध फैल जाती है। तब क्रोध को मिटाना नहीं पड़ता, क्रोध पाया ही नहीं जाता है। और क्रोध से जो एनर्जी और जो ताकत और जो शक्ति प्रकट होती थी, वही शक्ति प्रेम से प्रकट होने लगती है। और जो सेक्स था वही शक्ति ब्रह्मचर्य बन जाती है। सेक्स को दबाने से नहीं बल्कि स्वयं को जानने से जीवन रूपांतरित होता है, ट्रांसफार्मेशन हो जाता है।

एक आदमी अपने घर के बाहर खाद के ढेर लगा ले तो उस घर में रहना मुश्किल हो जाएगा, उस घर में दुर्गंध भर जाएगी, उस घर के पास से निकलना मुश्किल हो जाएगा। उस घर के वासी बहुत कठिनाई में पड़ जाएंगे, वह घर नरक हो जाएगा। लेकिन अगर वही आदमी उस खाद को अपनी बगिया में डाल दे और बीज बो दे, तो उस घर में फूल खिल जाएंगे, और घर में सुगंध फैल जाएगी। उसके रास्ते से निकलने वालों को भी सुगंध का फायदा मिलेगा।

यह सुगंध क्या है? यह वही दुर्गंध है जो खाद में छिपी थी। वही रूपांतरित होकर पौधों में जाकर सुगंध बन गई है। प्रेम क्या है? वही जो क्रोध था। और ब्रह्मचर्य क्या है? वही जो सेक्स था। ये दुश्मन नहीं हैं एक-दूसरों के, ये उन्हीं शक्तियों के रूपांतरण हैं, वे ही शक्तियां परिवर्तित हो जाती हैं। इसलिए अगर आपके भीतर क्रोध है, तो आप धन्य हैं, क्योंकि आपके भीतर ताकत है और प्रेम का जन्म हो सकता है। और अगर आपके भीतर सेक्स है, तो आप धन्य हैं, क्योंकि वही ताकत ब्रह्मचर्य बन सकती है, वही ताकत परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग बन सकती है।

इसलिए दुखी न हों और आत्म-निंदा न करें कि मेरे भीतर क्रोध है, काम है, फलां है, ढिकां है। आत्म-निंदा न करें। यह नैतिकता आत्म-निंदा सिखाती है, सेल्फ कंडेमनेशन सिखाती है। और जो आदमी खुद की निंदा करने लगता है वह आदमी अपनी ही आंखों में गिर जाता है। उस आदमी के विकास के सब द्वार बंद हो गए। उस आदमी का उर्ध्वगमन बंद हो गया। अब वह ऊपर नहीं जाएगा, अब उसकी नीचे की यात्रा शुरू हो गई। वह जितना अपने की निंदा करेगा उतना ही नीचे गिरता जाएगा और नीचे गिरता जाएगा।

इसलिए जिन कौमों ने बहुत नैतिकता की बातें की हैं उनका आदमी एकदम कुरूप हो गया है, एकदम अग्ली हो गया है। जिन कौमों ने नैतिकता की बहुत बातें की हैं उनका आदमी दीन-हीन हो गया। उसके चित्त में बड़ी ग्लानि, आत्म ग्लानि पैदा हो गई है। उसके भीतर वह गौरव और गरिमा नष्ट हो गई। क्योंकि सब पाप ही पाप उसको दिखाई पड़ता है। क्रोध, ईमान नहीं है, बेईमानी है, चोरी है, यह सब क्या है? उसको सब भीतर खोजता है तो पाप ही पाप दिखाई पड़ता है। और इस पाप ही पाप में वह दबा जाता है, टूटा जाता है, नष्ट हुआ जाता है।

इस ग्लानि को छोड़ दें। यह ग्लानि बहुत अशुभ है। ये जीवन की शक्तियां हैं जिनकी आप निंदा कर रहे हैं। यह शक्तियां आज जिस रूप में प्रकट हो रही हैं वह रूप जरूर शुभ नहीं है। लेकिन यही शक्तियां दूसरे रूप में प्रकट हो सकती हैं और वह रूप बहुत शुभ हो सकता है। उसकी बदलाहट का रास्ता सीधी लड़ाई नहीं है, उसकी बदलाहट का रास्ता बहुत भिन्न है।

जैसा मैं निरंतर कहता हूं, अगर इस कमरे में अंधकार भरा हो और हम उसको लड़ कर, धक्के देकर निकालने लगें तो हम निकाल न पाएंगे। क्यों? अंधेरा बहुत ताकतवर है इसलिए? शायद जब न निकाल पाएंगे तो हमको यही ख्याल पैदा होगा कि इतने लोग हैं हम और इस कमरे के अंधेरे को निकालते हैं और अंधेरा नहीं निकलता। हम कमजोर हैं, अंधेरा ताकतवर है। यही ख्याल पैदा होगा। सीधा लॉजिक यही है। हम निकालते हैं और नहीं निकलता, हम हार जाते हैं, वह जीत जाता है। वह ताकतवर है।

लेकिन मैं आपसे कहता हूं, अंधेरा ताकतवर नहीं है। अंधेरा है ही नहीं, इसलिए आप नहीं निकाल पाते। अगर वह होता तो हम अपनी ताकत बढ़ा सकते थे। डाइनामाइट ले आते और तलवारें ले आते और एटम बम ले आते और निकाल देते। लेकिन हम कुछ भी ले आएं, हम निकाल न पाएंगे। अंधेरा है ही नहीं। फिर भी दिखाई तो पड़ता है। और जब मैं कहता हूं, अंधेरा नहीं है, तो मेरा मतलब क्या है? मेरा मतलब है, अंधेरा प्रकाश की एब्सेंस है, अनुपस्थिति है। अंधेरा किसी चीज की प्रेजेंस नहीं है। अंधेरा कोई चीज नहीं है। अंधेरा केवल अभाव है, केवल एब्सेंस है। प्रकाश नहीं है इसी का दूसरा नाम अंधेरा है। अंधेरा अलग से कुछ भी नहीं है। इसलिए आप दीया जला लें और खोजें अंधेरा कहां है। तो वह अंधेरा आपको नहीं मिलेगा। शायद आप सोचेंगे, बाहर चला गया, तो आप गलती में हैं। आप गलती में हैं अगर सोचते हैं बाहर चला गया। बाहर भी प्रकाश जला लें सब तरफ और यहां दीया जलाएं, तो आपको अंधेरा कहीं से जाता हुआ दिखाई नहीं पड़ेगा। अंधेरा था ही नहीं, चला गया, यह भाषा की गलती है। आ गया, यह भी भाषा की गलती है। केवल प्रकाश आता है और प्रकाश जाता है। अंधेरा न आता है और न अंधेरा जाता है, अंधेरा नहीं है।

इसलिए जो लोग अंधेरे से सीधी लड़ाई लड़ेंगे वे पागल हो जाएंगे, और या पाखंडी हो जाएंगे। अगर कोई आदमी एकदम आकर घर के बाहर कहे कि हां, मैंने अंधेरे को निकाल कर बाहर कर दिया, तो समझ लेना यह पाखंडी है। और अगर वह कहे कि मैं लड़ रहा हूं, लड़ रहा हूं, परेशान हुआ जा रहा हूं, अंधेरा निकलता नहीं है; लेकिन लड़ाई तो जारी रखनी है, अंधेरे को निकालना ही है, तो समझना की यह आदमी पागल होने के रास्ते पर चल रहा है।

अंधेरे को निकालने का तो कोई रास्ता नहीं है, लेकिन प्रकाश को जलाने का रास्ता है। और हम अब तक अंधेरे को निकालने में लगे रहे हैं। हम बच्चों को सिखाते हैं क्रोध मत करो, बेईमानी मत करो, यह न करो, वह न करो, सब न करो, सब अंधेरे को निकालने की बातें हैं। प्रकाश को जलाना सिखाइए, अंधेरे को निकालने का कोई सवाल नहीं है।

भीतर जो चेतना है, जो कांशसनेस है, उसे जगाने का रास्ता है। उसे जगाइए, उसे उठाइए, उभारिए। वह जो भीतर सोई है चेतना उसे जगाइए। वह जितनी जगेगी उतना ही अंधेरा नहीं पाया जाएगा। वह दीया जल जाए, अंधेरा नहीं है।

आत्म-ज्ञान वह दीया है। धर्म उस दीये को जलाने का उपाय है। नीति उपाय नहीं है। नीति से ज्यादा घातक, ज्यादा पाय.जनस, ज्यादा विषाक्त और जहरीली और कोई बात नहीं है। और दुनिया यह जो इतनी अनैतिक दिखाई पड़ रही है, यह नैतिक शिक्षा का परिणाम है। यह मत सोचिए कि नीति की कमी के कारण ऐसा हो रहा है। यह नीति की अति शिक्षा की प्रतिक्रिया है।

अब ऊब गए पांच हजार साल में लोग इस शिक्षा से और कुछ नहीं हुआ इस शिक्षा से। तो अब वे इसके विरोध में खड़े हैं। अब वे कहते हैं कि कुछ नहीं हुआ--इससे हम शराब पीएंगे, नाचेंगे, कूदेंगे, जो हमारे मन में होगा हम करेंगे। देख ली तुम्हारी शिक्षा और देख ली तुम्हारी सभ्यता। अब इसके विरोध में वे खड़े हैं। बिटनिक हैं और बीटल हैं, और सारी दुनिया के क्रोधी प्रतिक्रिया से भरे हुए युवक हैं। नई पीढ़ियां हैं वे कह रहे हैं, तोड़ो तुम्हारे चर्च-वर्च, हो गई बकवास, बंद करो यह, पांच हजार साल से देख ली तुम्हारी सारी बातें, तुम्हारे प्रीचर और तुम्हारे संन्यासी और तुम्हारे उपदेश और तुम्हारे धर्मगुरु देखे जा चुके अच्छी तरह से, दुनिया जरा भी नहीं बदली, अब क्षमा करो! अब तुम जो-जो कहते थे उसको हम तोड़ कर दिखा देंगे और बता देंगे कि सब गड़बड़ है और हमको जैसा जीना है हम जीएंगे, अब हम नहीं रुकना चाहते इन सीमाओं में। यह उसका रिएक्शन है, जो पांच हजार साल में किया गया उसकी प्रतिक्रिया है।

बच्चे ऊब गए और घबड़ा गए। और बच्चे कहते हैं, हम तोड़ देंगे यह सब। अब हमें ये नहीं चलेंगी सारी बातें। अब हमको जो ठीक लगेगा--चाहे वह कोई गलत कहता हो, बाइबिल गलत कहती हो और मनु गलत कहते हों और कनफ्यूशियस गलत कहता हो, कोई भी गलत कहता हो, सुन लिया हमने, अब हम नहीं सुनना चाहते। यह उसी शिक्षा का रिएक्शन है। उस शिक्षा का विरोध है यह। वह शिक्षा असफल हो गई है। उस असफलता के लिए लड़के आज बदला ले रहे हैं पुरानी पीढ़ियों से। यह बहुत स्वाभाविक है।

क्या करें इसमें? क्या उसी शिक्षा को दोहराए चले जाएं? मैं आपसे कहता हूं, आप मुर्दों को जिलाने की कोशिश कर रहे हैं। अब नहीं चलेगा यह। वह शिक्षा नहीं दोहराई जा सकती है। वह मर चुकी है। उसे दफना दें। दोहराने की कोई जरूरत नहीं है। जितना आप दोहराएंगे, लड़के उसकी प्रतिक्रिया में उतना ही विरोध करेंगे। उसके खिलाफ उतना ही विरोध चलेगा। आप अपने हाथ से आने वाली पीढ़ियों को नरक में ढकेल रहे हैं। ढकेल देंगे।

निषेध विरोध लाता है। यहां खिड़की पर हम एक तख्ती टांग दें और लिख दें कि यहां झांकना मना है। फिर आपमें से कोई इतना ताकतवर है जो बिना झांके निकल जाए। और अगर निकल गया तो रात भर पछताएगा और नींद नहीं आ सकेगी। और सपने में देखेगा कि पहुंच गया उसी दरवाजे पर और पट्टी उघाड़ कर देख रहा है कि भीतर क्या है? शायद जिंदगी भर वह परेशान रहे और बार-बार यह ख्याल आ जाए कि क्या था उस दरवाजे के भीतर जिसको मैं छोड़ आया? निषेध, मत झांको, झांकने की इच्छा पैदा करता है।

नैतिक शिक्षा ने अनैतिक होने की भाव-दशा पैदा कर दी है--मत करो, मत करो, मत करो। सब तरफ से यह आवाज भीतर बच्चों के मन में यह प्रतिक्रिया बन गई कि करो, करो, करो।

फ्रायड अपनी पत्नी और अपने बच्चे के साथ एक दिन एक बगीचे में गया। छोटा बच्चा था, उसकी पत्नी ने कहा कि देखो, पास ही रहना और जो फव्वारा है बगीचे में, उस तरफ मत जाना। वे दोनों गपशप करते रहे और घूमते रहे। सांझ ढल गई और रात उतर आई और जब वे लौटने लगे तो उन्होंने देखा कि बच्चा नदारद है। उसकी पत्नी घबड़ाई और उसने कहा कि अब कहां ढूंढेंगे? इतनी बड़ी रात, इतना बड़ा बगीचा। दरवाजे बंद होने को आ गए हैं, वह बच्चा कहां गया? तो फ्रायड ने यह कहा कि पहले मुझे यह बताओ तुमने कहीं जाने को मना तो नहीं किया था? उसने कहाः मैंने मना किया था कि फव्वारे पर मत जाना। उसने कहाः चलो, पहले फव्वारे पर देख लें। सौ में से निन्यानबे मौके तो ये हैं कि वह फव्वारे पर हो, अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि है तो फव्वारे पर होगा। अगर बिल्कुल बुद्धिहीन है तो कहीं और भी हो सकता है। वे गए, वह फव्वारे पर पैर लटकाए हुए बैठा था।

यह बच्चों में जो प्रतिक्रिया आई है यह बुद्धिमत्ता का लक्षण है। बुद्धिहीन रहे होंगे वे लोग जिन्होंने इसके खिलाफ विरोध नहीं किया। बढ़ती हुई बुद्धिमत्ता और विचार इसका विरोध करेगी। क्योंकि निषेध का विरोध बिल्कुल स्वाभाविक है। फिर अब हम क्या करें? जाने दें गर्त में, जो हो होने दें। नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं, मेरी बात को गलत न समझ लेना। मैं यह कह रहा हूं कि हम जो कर रहे थे वह गलत था, कुछ और किया जा सकता है।

निषेध न करें। यह न कहें, यह न करो, यह न करो, यह न करो। चित्त पर यह भाव न लाएं। बल्कि क्या करो, किसको जगाओ, कोई पाजिटिव, कोई विधायक साधना जीवन में चाहिए जिससे आत्मा जगे, जागरूक हो। तो आज की संध्या तो मैं इतना ही कहूंगाः निषेधात्मक नीति अर्थहीन है। अर्थहीन ही नहीं, व्यर्थ है। व्यर्थ ही नहीं, घातक है। विधायक धर्म, पाजिटिव रिलीजन, निगेटिव मॉरेलिटी नहीं। विधायक धर्म क्या है और कैसे उपलब्ध हो सकता है, संभव नहीं होगा कि अभी मैं उसकी बात करूं। कल सुबह मैं विधायक धर्म की बात करने को हूं। कल सुबह मैं चर्चा करूंगा कि धर्म क्या है? अभी तो मैं कहता हूं, नीति जो कुछ भी है वह शुभ नहीं है।

एक अंतिम बात जरूर आपसे कह दूं। अगर भीतर विधायक धर्म का दीया जल जाए तो सारा जीवन बदल जाता है। क्योंकि रूट्स, जड़ों को हम पकड़ लेते हैं।

माओत्सु तुंग अपने बचपन की एक घटना कहा है। कहा है कि मैं छोटा था, मेरी मां की एक बहुत खूबसूरत बगिया थी। उस बगिया में बड़े प्यारे फूल लगते थे। सारे गांव के लोग उस बगिया के फूलों को देख कर हैरानी में रह जाते थे। और दूर-दूर के गांवों के लोग उन फूलों को देखने आते थे। मां बीमार पड़ी। उसे बीमारी की उतनी चिंता न थी जितनी अपनी बगिया की थी, कि उसके फूलों का, उसके पौधों का क्या होगा? कहीं वे बिगड़ न जाएं, कहीं वे सूख न जाएं। उसने बड़े जीवन भर की मेहनत से उस बगिया को खड़ा किया था। उसने खुद मेहनत की थी। वह चिंतित थी। तो माओ ने अपनी मां को कहा, चिंता न करें, मैं आपकी बगिया की देखभाल कर लूंगा। मैं फिकर कर लूंगा, आप चिंता न करें। और वह सुबह से शाम तक बगिया की फिकर करने लगा। लेकिन दो-चार दिन बीते कि उसको हैरानी हुई। पौधे सूखने लगे और कुम्हलाने लगे। तेज धूप के दिन थे और बगिया मुर्झाने लगी और जो कलियां आई थीं वे कलियां ही रह गईं, फूल न पाईं। वह बड़ा चिंतित हुआ और ज्यादा मेहनत करने लगा। सुबह से शाम तक बगिया में ही मेहनत करता। लेकिन पंद्रह दिन बाद मां जब थोड़ी ठीक हुई और बगिया में आ सकी तब तक बगिया बरबाद हो गई थी। पौधे कुम्हलाए हुए खड़े थे। पत्ते सूख गए थे। उसकी मां हैरान हुई, उसने कहाः तुम दिन भर रहते थे, यह क्या हाल हुआ? माओ ने कहाः मैं तो एक-एक फूल को पानी पिलाता था। एक-एक पत्ते को पोंछता था, एक-एक फूल को चूमता था कि बढ़ो, बड़े हो जाओ, लेकिन पता नहीं क्या हुआ कि यह बगिया सब सूख गई?

उसकी मां हंसी और उसने कहाः पागल, फूलों में फूलों के प्राण नहीं होते, प्राण होते हैं जड़ों में। तू फूलों को नहलाता रहा और जड़ों की कोई फिकर नहीं की। जड़ें दिखाई नहीं पड़तीं, अदृश्य हैं। फूल दिखाई पड़ते हैं, दृश्य। लेकिन जो दृश्य है उसकी जड़ें अदृश्य में हैं। जो दिखाई पड़ता है उसकी जड़ें उसमें हैं जो दिखाई नहीं पड़ता। अगर उसकी तुमने फिकर की होती तो फूलों की कोई फिकर करने की जरूरत नहीं थी। वे अपनी फिकर खुद कर लेते। अगर तुमने जड़ों में पानी दिया होता तो फूल तो अपने से आ जाते, पत्ते अपने से ताजे हो जाते, वे तो जड़ों की ताजगी से अपने आप ताजे हो जाते हैं। लेकिन तू तो पत्तों और फूलों को नहलाता रहा और जड़ें सूखती चली गईं। जड़ें सूख गईं, तो पत्तों और फूलों को कोई कितना भी नहलाए, तो कुछ भी नहीं हो सकता।

मैंने जब यह बात सुनी, तो मैं हैरान हुआ, यह बात तो पूरे आदमी की जिंदगी के बाबत सच है। हम फूलों को सम्हाल रहे हैं और जड़ों को भूल गए हैं। नीति तो केवल फूल है। सुंदर-सुंदर फूल हैं सत्य के, अहिंसा के, प्रेम के, करुणा के, बड़े सुंदर फूल हैं। और जिस जीवन में खिलते हैं वह बहुत धन्य है। लेकिन वे फूलों की जड़ें आत्मा में हैं। और जो उन फूलों को ही सम्हालता है उसकी आत्मा की जड़ें सूख जाएंगी, उसकी बगिया में फूल न खिलेंगे। फिर एक रास्ता है, बाजार में प्लास्टिक के कागज के फूल मिलते हैं, वह उनको खरीद लाएगा और उनको अपने ऊपर से चिपका लेगा और फिर उन्हीं फूलों को मान कर जी लेगा।

हमारी सब अहिंसा और सब प्रेम और सब सत्य उधार और बाजार से खरीदा हुआ है, वह ऊपर से चिपकाया हुआ है। वह कागज के फूलों से ज्यादा नहीं। उसकी जड़ें धर्म की आत्मा से नहीं निकली हैं। इसलिए तो कैसे हम धर्म की जड़ों को पकड़ पाएं, जीवन की जड़ों को, वे जो रूट्स हैं हमारे भीतर उनको हम कैसे पानी दे पाएं, वह बात तो अभी नहीं करूंगा, वह कल सुबह के लिए छा.ेड देता हूं। वह कल सुबह मैं आपसे बात करूंगा।

मेरी इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है। हो सकता है कि उनमे से बहुत सी बातों ने बड़ी चोट पहुंचाई हो। अगर पहुंचाई हो तो मैं बहुत आनंदित हो जाऊंगा। क्षमा नहीं मांगूंगा। क्योंकि मैं चाहता हूं कि चोट पहुंचे। चोट पहुंचती है तो चिंतन पैदा होता है। धन्यभागी हैं वे जिनको चोट पहुंच जाती है। अभागे तो वे हैं जो बैठे सुनते रहते हैं, उनको कोई चोट भी नहीं पहुंचती, उनको कोई परेशानी भी नहीं होती, उनको कोई बेचैनी भी नहीं होती, उनमें कोई चिंतन भी पैदा नहीं होता। तो जिन-जिन मित्रों को चोट पहुंची हो, उनका मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और जिनको न पहुंची हो, अगली बार आऊंगा तो और ज्यादा चोट पहुंचाने की कोशिश करूंगा ताकि उनको भी पहुंच जाए।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत धन्यवाद। अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

विज्ञान और धर्म में कोई विरोध नहीं

एक मित्र ने पूछा है कि विज्ञानवाद और धर्मवाद में कैसे मेल बनाया जा सकता है?

मेल उन चीजों में बनाना होता है जिनमें कोई विरोध हो। धर्म और विज्ञान में तो कोई विरोध नहीं है। इसलिए मेल बनाने की बात ही फिजूल। दो चीजों में दुश्मनी हो तो दोस्ती करवानी होती है, लेकिन दुश्मनी ही न हो तो, तो दोस्ती का सवाल क्या? धर्म और विज्ञान में विरोध नहीं है, विज्ञान और अंधविश्वास में विरोध है। और अंधविश्वास धर्म नहीं है। अंधविश्वास को ही क्योंकि हम धर्म समझते रहे हैं, तो इसलिए कठिनाई खड़ी हो गई। अन्यथा धर्म से ज्यादा वैज्ञानिक तो और कोई चीज नहीं है। विज्ञान तो एक पद्धति है, एक मेथड है सत्य की खोज का। जब उस पद्धति का हम उपयोग करते हैं पदार्थ के लिए तो साइंस जन्म जाती है और जब उसी पद्धति का उपयोग करते हैं हम चेतना की खोज में तो धर्म जन्म जाता है। विज्ञान का एक प्रयोग साइंस है, दूसरा प्रयोग धर्म है। विज्ञान एक पद्धति है, साइंटिफिक एटिट्यूड, वैज्ञानिक दृष्टिकोण देखने का एक ढंग है। लेकिन यह प्रश्न इसीलिए उठ आया होगा तुम्हारे मनों ने क्योंकि जिसे हम धर्म कहते हैं वह विज्ञान से बड़े विरोध में मालूम पड़ता है। तो स्मरण रखना, वह धर्म ही नहीं है जो विज्ञान के विरोध में पड़ जाता हो। वह होगा कोई अंधापन। कोई सुपरस्टीशन और अंधविश्वास विज्ञान के मार्ग में ही बाधा नहीं है, धर्म के मार्ग में भी बाधा है। इसलिए दुनिया में बढ़ रही वैज्ञानिक रुचि उस सारे धर्म को जला कर नष्ट कर देगी जो धर्म नहीं है। और इस वैज्ञानिक क्रांति से गुजर जाने के बाद जो शेष रह जाएगा वही खरा सच्चा सोना होगा, वही धर्म होगा।

विरोध नहीं है इन दोनों बातों में। और दुनिया के जो लोग सच में धार्मिक थे उनसे ज्यादा वैज्ञानिक आदमी खोजना कठिन है। महावीर, या बुद्ध, या क्राइस्ट इनसे ज्यादा वैज्ञानिक मनुष्य खोजना कठिन है। इन्होंने विज्ञान की खोज अपनी ही चेतना पर की, खुद के भीतर जो रहस्य छिपा है उसे जानना चाहा। रहस्य बाहर ही नहीं है, भीतर भी है। पत्थर-कंकड़ में, पानी में, मिट्टी में ही रहस्य नहीं है, रहस्य मुझमें भी है। हमारे भीतर भी कुछ है तो हम पदार्थ को ही जानते रहेंगे या उसको भी जो हमारे भीतर छिपी हुई चेतना है, जीवंत है? जिसे हम अभी विज्ञान करके जानते हैं वह जो बाहर है उसे खोजता है। और जिसे हम धर्म करके जानते हैं वह उसे जो भीतर है। आज नहीं कल दोनों की खोज एक हो जाने वाली है। यह खोज बहुत दिन तक दो नही रह सकती। तब दुनिया में वैज्ञानिक पद्धति होगी। उसके दो प्रयोग होंगेः पदार्थ पर और परमात्मा पर।

निश्चित ही तथाकथित धर्म इसके विरोध में खड़े होंगे। वे इसलिए खड़े होंगे कि हिंदू और मुसलमान, जैन और ईसाई, अगर विज्ञान का प्रयोग हुआ आत्मा के जीवन में भी तो ये सब नहीं बच सकेंगे। धर्म बचेगा, हिंदू नहीं बच सकेगा, मुसलमान, जैन, ईसाई नहीं बच सकेगा। क्योंकि विज्ञान जिस दिशा में भी काम करता है वही युनिवर्सल पर, सार्वलौकिक पर पहुंच जाता है। कोई हिंदू गणित हो सकता है, या मुसलमान कैमिस्ट्री हो सकती है, या ईसाई फिजिक्स हो सकती है? कोई हंसेगा अगर कोई यह कहेगा कि मुसलमानों की फिजिक्स अलग, हिंदुओं की अलग, तो हम हंसेंगे, हम कहेंगे, तुम पागल हो। पदार्थ के नियम तो वही हैं, एक ही हैं सारी दुनिया में, सब लोगों के लिए, तो एक ही फिजिक्स है, न हिंदुओं की अलग है, न मुसलमानों की, न ईसाईयों की। धर्म भी कैसे अलग-अलग हो सकते हैं? जब पदार्थ के नियम एक हैं, तो परमात्मा के नियम कैसे अलग-अलग हो सकते हैं?

जो बाहर की दुनिया है जब उसके नियम सार्वलौकिक हैं, युनिवर्सल हैं, तो मनुष्य के भीतर जो चेतना छिपी है, जीवन छिपा है, उसके नियम भी अलग-अलग नहीं हो सकते, उसके नियम भी एक ही होंगे। इसलिए वैज्ञानिक धर्म के जन्म में ये तथाकथित धर्म सब बाधा बने हुए हैं। वे नहीं चाहते कि वैज्ञानिक धर्म का जन्म हो। साइंटिफिक रिलीजन का जन्म दुनिया के सभी संप्रदायों की मृत्यु की घोषणा होगी। इसलिए वे विरोध में हैं। इसलिए वे विज्ञान के विरोध में हैं। क्योंकि वैज्ञानिकता का अंतिम प्रयोग उन सबको बहा ले जाएगा और समाप्त कर देगा। और मुझे तो लगता है इससे शुभ घड़ी दूसरी नहीं हो सकती। कि ये सब बह जाएं, दुनिया से संप्रदाय बह जाएं--हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई का फासला बह जाए, आदमी बच रहे। क्योंकि इस फासले ने बहुत खतरा पैदा कर दिया है, इस फासले ने मनुष्य को मनुष्य से तोड़ दिया है। और जो चीज मनुष्य को मनुष्य से ही तोड़ देती हो वह चीज मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ सकेगी? वह नहीं जोड़ सकती। इसलिए धर्मों के नाम पर जो कुछ हुआ है, चर्च और मंदिर और शिवालय ने जो कुछ किया है, उसने मनुष्य को कल्याण और मंगल की दिशा नहीं दी, बल्कि हिंसा, रक्तपात, युद्ध और घृणा का मार्ग दिया है। सारी जमीन पर मनुष्य मनुष्य को एक-दूसरे का दुश्मन बना दिया है। धर्म तो प्रेम है, लेकिन धर्मों ने तो घृणा सिखा दी। धर्म तो सबको एक कर देता, लेकिन धर्मों ने तो सबको तोड़ दिया है।

एक छोटी सी घटना मैं तुम्हें कहूं, शायद उससे मेरी बात समझ में आ जाए। एक काले आदमी ने एक चर्च के द्वार पर संध्या जाकर द्वार खटखटाया, पादरी ने द्वार खोला, लेकिन देखा काला आदमी है, वह चर्च तो सफेद लोगों का था, काले आदमी के लिए उस चर्च में कोई जगह न हो सकती थी। पुराने दिन होते तो वह पादरी उसे हटा देता और कहता कि यहां तुमने आने की हिम्मत कैसे की? तुम्हारी छाया पड़ गई इन सीढ़ियों पर, सीढ़ियां अपवित्र हो गईं, इन्हें साफ करो। उसकी हत्या भी की जा सकती थी। ऐसे शूद्रों के कानों में तथाकथित धार्मिक कहे जाने वाले दुष्ट लोगों ने सीसा पिघलवा कर भरवा दिया है जिन्होंने जाकर मंदिर के पास खड़े होकर वेद-मंत्र सुन लिए हों। क्योंकि शूद्रों के कान पवित्र वेद-मंत्रों को सुनने के लिए नहीं हैं। ऐसे आदमियों की छाया पड़ जाना भी पाप और अपराध रहा है इस देश में भी, इस देश के बाहर भी। पुराने दिन होते तो शायद उस काले आदमी की जिंदगी खतरे में पड़ जाती। लेकिन दिन बदल गए हैं, लेकिन आदमी का दिल तो नहीं बदला।

उस पादरी ने कहाः मित्र, यह शब्द बिल्कुल झूठा रहा होगा, क्योंकि जो उसके इरादे थे वे मित्र के बिल्कुल नहीं थे। लेकिन उसने कहाः मित्र, जैसे हम सब झूठी भाषाएं बोलते हैं, वह भी बोला, और जो हमारे बीच सबसे ज्यादा चालाक, सबसे ज्यादा कनिंग हैं, वे ऐसी भाषा को बहुत, बहुत कुशल होते हैं, उसने उस नीग्रो को कहाः मित्र, इस चर्च में आए हो स्वागत है, लेकिन जब तक हृदय पवित्र नहीं है तब तक चर्च में आने से भी क्या होगा? परमात्मा के दर्शन तो तभी हो सकते हैं जब हृदय पवित्र और शांत हो। तो जाओ, पहले हृदय को करो पवित्र और फिर आना।

नीग्रो वापस लौट गया। उस पुरोहित ने मन में सोचा होगा, न होगा कभी मन पवित्र और न यह आएगा। उसके आने की कोई संभावना नहीं है। दिन आए और गए, माह आए और गए और वर्ष पूरा होने को आ गया। एक दिन चर्च के पास से निकलता दिखाई पड़ा वही नीग्रो, वही काला आदमी। वह पुरोहित हैरानी में पड़ा कि कहीं वह चर्च में तो नहीं आना चाह रहा? लेकिन नहीं, उसने तो चर्च की तरफ आंख भी उठा कर न देखा और वह चला गया अपनी राह। पुरोहित देखता रहा। हैरानी हुई उसे देख कर। उस आदमी में तो कोई बड़ी चीज जैसे बदल गई थी। उसके आस-पास जैसे शांति का एक मंडल चल रहा था। जैसे उसकी आंखों में कोई नई ज्योति, कोई नई लहर आ गई थी, कोई नई खबर। जैसे वह कुछ दूसरा आदमी हो गया था, एकदम शांत और मौन। उसकी काली चमड़ी से भी जैसे कोई चमक पैदा हो गई थी, कोई पवित्रता उससे झलकने लगी थी, उसके उठते कदमों में भी जैसे कोई अलग ही बात थी।

वह चर्च का पादरी दौड़ा और उसे रोका और कहाः महानुभाव, आप फिर दुबारा आए नहीं? वह नीग्रो हंसने लगा, उसने कहाः मैंने तुम्हारी बात मान कर मन को शांत और पवित्र करने की साधना की। और एक दिन रात जब मैं प्रार्थना करके सो गया और मेरा हृदय एकदम मौन था, तो रात मैंने सपने में देखा कि परमात्मा आए हैं और मुझसे पूछते हैं कि तू क्यों इतनी प्रार्थनाएं कर रहा है? क्यों इतनी साधना कर रहा है? क्या चाहता है? तो मैंने कहाः मैं उस चर्च में जाना चाहता हूं जो हमारे गांव में है। तो वह परमात्मा हंसने लगा और उसने कहाः तू पागल है, तू उस चर्च में कभी न जा सकेगा, क्योंकि मैं खुद दस साल से वहां जाने की कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी मुझे घुसने नहीं देता। वह पादरी मुझे भीतर नहीं आने देता। तो जब मैं ही नहीं घुस पा रहा हूं, जिसका कि वह कहता है पादरी, यह मंदिर है, वही नहीं घुस पा रहा है, मंदिर का मालिक बाहर, तो तू कैसे घुस सकेगा? तेरी क्या हैसियत है? तो यह वरदान न मांग, कुछ और मांगना हो तो मांग ले। जब मैं ही नहीं घुस पाता हूं, तो मैं तुझे कैसे वरदान दूं कि तू जा सकेगा? इसलिए उसने कहा कि फिर मैंने आने की हिम्मत न की। जब परमात्मा भी अपने पुरोहित से डरता है तो मेरी क्या सामर्थ्य है।

मैं आपसे कहता हूं, दस साल की बात होती, तो हम किसी तरह सह भी लेते, यह दस साल की बात नहीं है, यह हजारों-हजारों साल की बात है। आज तक परमात्मा किसी पुरोहित के मंदिर में प्रवेश नहीं पा सका है, न कभी आगे भी पा सकेगा। पुरोहित और परमात्मा दोस्त नहीं हैं। पुरोहित शोषण कर रहा है, परमात्मा का दोस्त कैसे हो सकता है? पुरोहित दुकान चला रहा है परमात्मा की, दोस्त कैसे हो सकता है? पुरोहित बेच रहा है परमात्मा को, दोस्त कैसे हो सकता है? और क्योंकि हरेक पुरोहित दुकान चला रहा है, इसलिए दो पुरोहितों में भी दोस्ती नहीं हो सकती। दो दुकानदारों में दोस्ती हो सकती है? जो एक ही धंधा करते हों--प्रतिस्पर्धा हो सकती है, दोस्ती कहां? दुश्मनी हो सकती है, गला-काट प्रतियोगिता हो सकती है, दोस्ती नहीं हो सकती है। इसलिए हिंदू और मुसलमान में झगड़ा है, यह धर्मों का झगड़ा नहीं, यह हिंदू और मुसलमान पुरोहित का झगड़ा है। यह परमात्मा का झगड़ा नहीं, यह परमात्मा के नाम पर बनी हुई दुकानों का झगड़ा है। और इन दुकानों ने हजारों साल में हजारों तरह के अंधविश्वास प्रचलित किए हैं। और आदमी की आंख बंद करने की कोशिश की है। क्योंकि जब लोगों की आंखें खुल जाएंगी, उनका शोषण धर्म के नाम पर नहीं हो सकेगा।

और आई हुई विज्ञान की रोशनी ने इन सारे पुरोहितों को बड़ी घबड़ाहट पैदा कर दी है, वे बड़े बेचैन हो गए हैं। और वे कह रहे हैं कि धर्म और विज्ञान में दुश्मनी है। धर्म बात अलग है, विज्ञान बात अलग है। वह तो पूरी कोशिश उन्होंने यह की है कि विज्ञान विकसित न हो पाए। गैलीलियो से लेकर आज तक धर्म का पुरोहित हर कोशिश कर रहा है कि विज्ञान विकसित न हो पाए। क्योंकि विज्ञान का हर बढ़ता हुआ कदम अंधविश्वास की मौत लाता है। लेकिन इससे धर्म को भयभीत होने का कोई भी कारण नहीं है। धर्म तो है सत्य, विज्ञान की हर जीत सत्य की जीत है। धर्म को उससे कोई नुकसान पहुंचने वाला नहीं है। धर्मों को नुकसान पहुंचेगा, धर्म को नहीं।

तो मैं निवेदन करूं, धर्म और विज्ञान के बीच मेल खोजने की भूल मत करना। अगर मेल करने की कोशिश की तो वे मेल धर्मों और विज्ञान के बीच होगा, जो कभी नहीं हो सकता। लेकिन धर्म और विज्ञान के बीच तो सदा से मेल है। वह तो एक ही सत्य के दो पहलू हैं। इसलिए उस संबंध में मैं नहीं बता सकता कि कैसे मेल हो सकता है, क्योंकि मुझे आज तक यही समझ में नहीं आ पाया कि कोई झगड़ा हुआ है।

एक छोटी सी घटना और दूसरे प्रश्न को मैं लूंगा।

हैनरी थारो मरणशय्या पर पड़ा हुआ था। कभी किसी ने उसे चर्च जाते नहीं देखा। कोई भला आदमी कभी नहीं जाता। भला आदमी था। कभी किसी ने उसे प्रार्थना करते नहीं देखा। कौन सज्जन आदमी कब प्रार्थना करता है? कभी किसी ने उसे बाइबिल की पूजा करते नहीं देखा। मरणशय्या पर पड़ा था। तो गांव के पादरी ने

सोचा कि अब यह क्षण अच्छा है, यह मौका अच्छा है, इस वक्त मौत करीब है, घबड़ा गया होगा, अब चलें। मौत का फायदा उठाते रहे हैं पुरोहित, पादरी, तथाकथित धार्मिक लोग। जवानी में तो आदमी को नहीं पकड़ पाते तो फिर बुढ़ापे में पकड़ लेते हैं। मौत करीब होती है, भय सामने होता है, तो प्रलोभन दिया जा सकता है कि आ जाओ हमारी तरफ, मान लो हमारी बात, तो भगवान से तुम्हारे लिए सिफारिश कर देंगे कुछ, अच्छा इंतजाम कर देंगे। मरते वक्त अकेला आदमी घबड़ा उठता है। इसलिए तो चर्चों और मंदिरों में बूढ़े और बुढ़ियां दिखाई पड़ते हैं, कोई जवान आदमी दिखाई नहीं पड़ता। यह आकस्मिक नहीं है, यह कोई एक्सिडेंटल बात नहीं है। इसके पीछे कोई राज है। सोचा कि थारो अब पड़ गया है बीमार और लोग कहते हैं बचेगा नहीं।

तो गांव का पादरी इस मौके को स्वर्ण अवसर समझ कर उसके पास गया। और उसने कहा कि हैनरी थारो, महाशय, अब पश्चात्ताप कर लो। और भगवान से अपना मिलाप कर लो। प्रेम कायम कर लो। उसने जो शब्द कहे पादरी ने वे ये थे कि क्या तुमने परमात्मा और अपने बीच मेल कायम कर लिया है? हैनरी थारो ने आंख खोली, बिल्कुल मरने के करीब था, लेकिन बड़ा बहादुर और धार्मिक आदमी रहा होगा, उसने कहाः क्या कहते हैं आप? मुझे याद नहीं पड़ता कि मुझमें और परमात्मा के बीच कभी झगड़ा हुआ हो, मेल करने का सवाल कहां है? मुझे याद नहीं पड़ता कि मैं कभी उससे लड़ा भी हूं, हम सदा के दोस्त हैं। तो मेल किससे करूं और कैसा करूं जब हमारा कोई झगड़ा ही कभी न हुआ हो? कभी जिंदगी में मुझे याद नहीं आता है कि हमारे और उसके बीच कोई कटुता पैदा हुई हो? जिनके मन में कटुता पैदा हुई हो वे जाएं और मेल पैदा करें और प्रार्थनाएं करें, मैं किस बात के लिए प्रार्थना करूं? किस मेल की प्रार्थना करूं।

यही मैं आपसे कहता हूं, मुझे नहीं दिखाई पड़ता है कि विज्ञान और धर्म में कभी कोई शत्रुता है। इसलिए मेल कैसा और किसका? रह गए वे धर्म जिनसे उसकी शत्रुता है, तो जितनी जल्दी उनकी अरथी निकल जाए उतना शुभ है। उतना मनुष्य-जाति के इतिहास में उससे बड़ा कोई स्वर्णिम अवसर न होगा जिस दिन धर्मों की अरथी निकल जाएगी। क्यों? क्योंकि तब धर्म का जन्म हो सकता है, एक ऐसे धर्म का जो सबका होगा और जिसमें सब होंगे। एक ऐसे धर्म का जो वैज्ञानिक होगा, अंधविश्वासी नहीं। एक ऐसे धर्म का जो श्रद्धा पर नहीं बल्कि विचार और विवेक पर खड़ा होगा। एक ऐसे धर्म का जो इस खंड का और उस खंड का नहीं होगा बल्कि अखंड और सार्वलौकिक होगा। वैसे धर्म के जन्म में धर्मों ने ही अटकाव दिया है। इसलिए वे जाते हैं तो बहुत अच्छा है। जो भी धार्मिक लोग हैं उन्हें उनकी विदाई का तत्क्षण आरंभ कर लेना चाहिए, उन्हें विदा दे देनी चाहिए।

पूछा हैः अणु-युग में आत्मा की साधना कहां तक समर्थनीय है?

मेरी पहली बात से कुछ तो ख्याल में आया होगा कि अणु और आत्मा का कोई विरोध नहीं है, बल्कि अणु विज्ञान ने, एटामिक साइंस ने यह बात बड़े अदभुत रूप से सिद्ध कर दीः एक छोटे से अणु में परम शक्ति निवास करती है। एक छोटे से पदार्थ के खंड में जिसे हम आंख से भी न देख सकेंगे, जिसे बड़ी-बड़ी दूरबीनें भी देखनें में समर्थ नहीं हैं, जो इतना छोटा है अणुखंड कि अगर हम एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखते चले जाएं तो हमारे बाल की मोटाई के बराबर होंगे। एक लाख अणु एक के ऊपर एक रख दिए जाने पर हमारे बाल की मोटाई लेंगे, इतना छोटा सा जो अणु है, उसमें विज्ञान ने इतनी विराट शक्ति खोज निकाली है कि आज सारी दुनिया भयभीत है कि कहीं अणु बमों का विस्फोट हुआ तो फिर मनुष्य बच नहीं सकेगा। इसका क्या अर्थ है? इससे किस बात की सूचना मिलती है? इससे इस बात की सूचना मिलती है कि छोटे को छोटा मत समझ लेना, कोई छोटा, छोटा नहीं है, क्षुद्रतम में विराटतम छिपा हुआ है। जो क्षुद्रतम है उसमें विराट शक्ति का निवास है।

क्षुद्र कुछ भी नहीं है, सभी कुछ विराट है। इससे यह खबर मिलती है। और इससे यह भी खबर मिलती है कि जब पदार्थ के एक अणु में इतनी ताकत है तो चेतना के एक अणु में कितनी शक्ति न हो सकेगी?

आत्मा चेतना का अणु है। जैसे पदार्थ को हमने खोजते-खोजते आखिरी जगह जाकर अणु को पकड़ लिया है, वैसे ही जिन लोगों ने चेतना की खोज की है, खोज करते-करते उन्होंने अंततः जाकर आत्मा के अणु को पकड़ लिया। आत्मा इकाई है चैतन्य की और अणु इकाई है पदार्थ की। विज्ञान अणु पर पहुंचा है, धर्म आत्मा पर। दोनों की खोजें हैं। दोनों की खोजें बड़ी वैज्ञानिक हैं। और ऐसी दुनिया में जब कि अणु खोज लिया गया है।

पूछा है मित्र ने कि आत्मा की साधना की क्या सार्थकता है? क्या समर्थता, क्या उसका समर्थन किया जा सकता है?

अणु तक जब तक मनुष्य नहीं पहुंचा था तब तक अगर आत्मा को न भी जानता तो चल सकता था, अब नहीं चल सकेगा। क्योंकि पदार्थ की शक्ति जिस मनुष्य के हाथों में आ गई हो विराट और अपने भीतर जो कुछ भी न जानता हो और अज्ञान से भरा हो, अज्ञान के हाथों में इतनी शक्ति खतरनाक ही सिद्ध हो सकती है, और क्या होगा? एक छोटे बच्चे को हम तलवार पकड़ा दें, तो क्या होगा? ऐसे ही छोटे से बच्चे को जो आत्मा की दृष्टि से बिल्कुल बच्चा है, उस आदमी के हाथ में एटम आ गया है, क्या होगा? हिरोशिमा, नागासाकी होंगे। युद्ध होंगे, आज नहीं कल सारी दुनिया को डुबाने का आयोजन होगा। मनुष्य के हाथ में उतनी ही शक्ति शुभ है जितनी उसके भीतर शांति हो। भीतर शांति न हो बाहर शक्ति हो तो बहुत खतरनाक है यह मेल। और भीतर शांति पैदा होती है उसी मात्रा में जिस मात्रा में मनुष्य चेतना से परिचित होता है। बाहर शक्ति उपलब्ध होती है उसी मात्रा में जितना मनुष्य पदार्थ के अंतिम से अंतिम खंड को समझ पाता है। और भीतर शक्ति उपलब्ध होती है, शांति उपलब्ध होती है उसी मात्रा में जितना वह स्वयं की अंतिम से अंतिम, े गहरी से गहरी अवस्था को समझ पाता है।

तो अब तो बहुत जरूरी है अगर आदमी ने आत्मा को न समझा, तो अणु को समझना बहुत महंगा पड़ जाने वाला है। इस नासमझ आदमी के हाथों में अणु सिवाय आत्मघात के और कुछ भी न बन सकेगा। शायद तुम्हें अंदाज भी न हो कि हमने अपने आत्मघात की बड़ी तैयारी कर रखी है। पचास हजार उदजन बम हमने बना रखे हैं, ये उदजन बम बहुत ज्यादा हैं। एक जमीन बहुत छोटी है, इस तरह की सात जमीनों को बिल्कुल नष्ट कर देने के लिए काफी हैं। आदमी की संख्या तो बहुत थोड़ी है अभी, कोई तीन, साढ़े तीन अरब, इससे सात गुने आदमी हों तो उन सबको मारने का हमने इंतजाम कर रखा है।

अगर आदमी के भीतर कोई शांति का सुराग नहीं खोजा जा सका तो क्या होगा? यह सारी तैयारी का क्या होगा? एक राजनीतिज्ञ पागल हो जाए, और मजे की बात यह है कि बिना पागल हुए कोई राजनीतिज्ञ कभी कोई होता ही नहीं, और अगर एक राजनीतिज्ञ पागल हो जाए, तो सारी दुनिया के विनाश की ताकत उसके हाथ में है। और राजनीतिज्ञ को हम भलीभांति जानते हैं कि यह किस तरह का आदमी होता है? दुनिया अच्छी होगी तो इस तरह के आदमी का हम चिकित्सालय में इलाज करवाएंगे। लेकिन अभी हम उसको मुख्यमंत्री बनाते हैं, प्रधानमंत्री बनाते हैं। हमारे बीच जो आज सबसे रुग्ण मस्तिष्क का आदमी है उसके हाथ में सबसे ज्यादा ताकत है। और उस ताकत के पास विज्ञान ने अणु की शक्ति दे दी है, अब क्या होगा? अमरीका का एक राजनीतिज्ञ गुस्से में आ जाए, रूस का एक राजनीतिज्ञ गुस्से में आ जाए, क्या होगा? उसका गुस्सा सारी दुनिया की मौत बन सकता है। उसके हाथ में अपरिसीम ताकत मिल गई। इस ताकत के विरोध में सारे जगत मे आत्मिक शक्ति का अविर्भाव होना चाहिए। नहीं तो मनुष्य के जीवन के दिन बहुत इने-गिने हैं। यह जिंदगी बहुत दिन चलने वाली नहीं है। तैयारी हमारी पूरी हो गई है, विस्फोट किसी भी दिन हो सकता है।

इसलिए यह मत पूछो कि अणु-युग में आत्मा की साधना की क्या सार्थकता है? पुराने दिनों में आत्मा न भी साधी जाती तो चल जाता, लकड़ी वगैरह से लड़ाई करनी पड़ती थी, तीर-भाले चलाने पड़ते थे, कुछ बड़ा खतरा नहीं था, हिंसा बहुत सीमित थी। अशांत आदमी के पास बहुत बड़ी ताकत नहीं थी। लेकिन आज तो बहुत बड़ी ताकत है। और आदमी बिल्कुल अशांत है। यह आदमी शांत होना चाहिए। इसका शांत हो जाना एकदम अपरिहार्य हो उठा है। एक क्षण भी इसे खोना खतरनाक है।

इसलिए दुनिया में जो भी विचारशील हैं उन्हें यह समझना होगा कि आत्मा की दिशा में जितना काम हो सके और जितनी तीव्रता से हो सके, और जितने लोगों के भीतर आत्मा की प्यास को, खोज को, गहराई को जगाया जा सके, और जितनी तीव्रता से जगाया जा सके, क्योंकि कोई हिसाब नहीं है कि क्षण हमारे हाथ में कितने हैं, उसी मात्रा में, उसी मात्रा में मनुष्य का भविष्य सुरक्षित हो सकता है। अणु की शक्ति खड़ी हो गई है, आत्मा की शक्ति को भी खड़ा करना जरूरी है। और यह बिना आत्मा की तरफ साधना किए नहीं होगा। इसलिए बहुत-बहुत जरूरी है आज, आज से ज्यादा जरूरी यह बात कभी भी नहीं थी, और शायद आगे भी कभी भी न हो। ये क्षण शायद मनुष्य के जीवन में सबसे बड़े संकट के, सबसे बड़ी क्राइसिस के दिन हैं। इसी वक्त अगर हम आत्मिक शक्ति को भी जगा सकें, तो अणु की शक्ति विनाश न बन कर सृजन बन सकती है। उससे बहुत बड़ा सृजन हो सकता है। शायद दुनिया में किसी आदमी के भूखे रहने की अब कोई जरूरत नहीं है। और न किसी आदमी को घातक बीमार होने की जरूरत है। और शायद इतनी जल्दी मरने की भी किसी को कोई जरूरत नहीं है।

अगर अणु की शक्ति का हम सृजनात्मक, क्रिएटिव उपयोग कर सकें, तो यह जमीन वह स्वर्ग बन सकती है जिसकी कहानियां पुराणों में हैं। यह जमीन वह स्वर्ग बन सकती है। इतनी बड़ी शक्ति हमारे हाथ में आ गई है। लेकिन अगर मन हमारा बेचैन और अशांत रहा, तो इसका हम एक ही उपयोग कर सकेंगे, और वह यह कि इसी में हम जल जाएं और नष्ट हो जाएं। जो ताकत सौभाग्य बन सकती थी, वही हमारा दुर्भाग्य बन जाएगी। जो शक्ति हमारे लिए वरदान सिद्ध होती वही अभिशाप हो सकती है। इसलिए बहुत-बहुत जरूरत है कि आत्मा की खोज उस दिशा में साधना हो और उसे पाया जाए। और बहुत लोगों के भीतर वह दीया जल सके।

एक युवक ने पूछा हैः आपकी बातें ठीक मालूम पड़ती हैं, लेकिन उनसे तो क्रांति हो जाएगी, उससे तो विद्रोह पैदा हो जाएगा, उससे तो अराजकता पैदा हो सकती है।

अगर हम ठीक से देखें, तो हमारे समाज में जितनी अराजकता है, जितनी अनार्की है, इससे ज्यादा भी अनार्की किसी समाज में कभी हो सकती है? यह समाज जितना बीमार और रुग्ण, जितना अशांत, अभिशापग्रस्त है, कोई और समाज भी इससे ज्यादा अभिशापग्रस्त हो सकता है? क्या है इसमें जो बचाने जैसा है? क्या है इसमें? सब कुछ सड़-गल गया है, सब कुछ कुरूप हो गया है। तो घबड़ाहट क्या है अगर कोई बात ऐसी मालूम पड़ती हो कि उससे क्रांति हो जाए? क्रांति तो चाहिए, परिवर्तन तो चाहिए। जो समाज परिवर्तित होना बंद कर देता है वह असल में जीवित ही नहीं रह जाता। परिवर्तन तो रोज, जितना जीवित समाज होगा उतने तीव्र परिवर्तन होते हैं उसके भीतर। जितना जीवंत होता है प्रवाह उतनी ही दूर की यात्रा करता है, उतने ही नये पथों को खोजता है। क्रांति तो जीवन है, उससे क्या घबड़ाना? और युवक होकर कोई ऐसी बात करे कि क्रांति हो जाएगी और डरे, तो उसे समझ लेना चाहिए वह बूढ़ा हो चुका है, वह युवक नहीं है। एक बूढ़ा आदमी भयभीत हो सकता है। लेकिन जरूरी नहीं होता कि कोई शरीर से बूढ़ा हो गया हो तो बूढ़ा ही हो गया।

मैं एक गांव में अभी था, उस गांव के एक धनपति ने मुझे फोन किया और कहाः मैं अपनी मां को भी लाना चाहता हूं आपको सुनने, लेकिन उसकी उम्र नब्बे वर्ष है और पिछले चालीस वर्षों से वह चौबीस घंटे

माला जपती रहती है, मुझे डर लग रहा है कि कहीं आपकी बातों से उसे चोट न पहुंच जाए, और इस उम्र में कहीं उसके मन को बेचैनी न पैदा हो जाए, तो मैं लाऊं या न लाऊं? मैंने उनसे कहाः अगर तुम्हारी मां जवान होती तो मैं कहता न भी लाओ तो कोई हर्जा नहीं है, अभी वक्त है, लेकिन तुम्हारी मां के आगे कोई वक्त नहीं है इसलिए तुम जल्दी ले आओ। क्योंकि कुछ हो सकता हो तो हो जाना चाहिए। वह अपनी मां को डरते हुए लेकर आया। सभा के बाद मुझे मिले और कहने लगे, मैं बहुत हैरान हूं, सभा से उठने के बाद उन्होंने अपनी मां को पूछा होगा, कैसा लगा? उनकी मां ने कहाः चालीस साल से मैं माला जपती थी, वह माला हमेशा हाथ में रखती थी, उन्होंने कहाः माला जपने से कुछ भी नहीं होगा, मेरा अनुभव भी कहता है कि कुछ भी नहीं होता, तो मैं माला वहीं छोड़ आई हूं उसी सभा में, उसको वापस नहीं लाई हूं अपने साथ। वह बात खतम हो गई।

मैंने उनके लड़के को कहाः तुम बूढ़े हो, तुम्हारी मां जवान है। नब्बे साल की उम्र में वह माला छोड़ आई उसी भवन में। और उसने कहा कि उन्होंने कहाः माला जपने से कुछ न होगा, यह बात ठीक है, पचास साल का मेरा अनुभव भी कहता है कि कुछ भी नहीं हुआ। मैंने पचास साल जप कर देख लिया। यह बात ठीक है, बात खत्म हो गई। मैं माला वहीं छोड़ आई हूं।

इस स्त्री को कोई बूढ़ा कह सकता है? लेकिन जवान आदमी जब विद्रोह और कं्राति से डरे तो उसे कोई जवान कहेगा? जवानी का मतलब क्या है? जवानी का मतलब हैः जिसका हृदय अभी परिवर्तन के लिए तैयार है। जो नये की खोज में निकल सकता है, जो नये की खोज का साहस कर सकता है, वह जवान है। जो नये से भयभीत होता है और पुराने से चिपट जाता है, वह बूढ़ा हो गया, मन से बूढ़ा हो गया।

हिंदुस्तान में जवान बहुत दिनों से पैदा होने बंद हो गए हैं, यहां बूढ़े आदमी ही पैदा होते हैं, जवान पैदा ही नहीं होता। हमारी सारी भाषा बूढ़ी हो गई। मेरा मतलब समझे बुढ़ापे से? क्रांति से क्या घबड़ाना? क्रांति तो होनी चाहिए, जरूर होनी चाहिए। क्योंकि क्रांति तो जिंदगी को रोज नया-नया करने की प्रक्रिया का नाम है। रोज नई-नई जिंदगी होती जानी चाहिए। ठहर नहीं जाना चाहिए जीवन का प्रवाह।

एक तालाब होता है, उसमें प्रवाह रुक गया होता है। एक नदी होती है, उसमें प्रवाह खुला और मुक्त होता है। नदी बड़ी क्रांतिकारी है, जो नये-नये रास्ते खोजती रहती है, अनजान सागर की तरह उसकी यात्रा चलती जाती है। तालाब शायद डर गया है। तालाब शायद बूढ़ी हो गई नदी, वह घबड़ा गया है, उसने अपने को बंद कर लिया है एक जगह, वह डरता है आगे जाने से। परिवर्तन करना पड़ेगा, न मालूम किन रास्तों पर चलना पड़े, न मालूम सुख हो कि दुख हो, यही ठीक है, जहां हैं वहीं ठीक है। एक स्टेट्स-को पैदा करता है। वहीं रुक जाता है, वहीं बंध जाता है। फिर पता है जो तालाब बंध जाता है तो क्या होता है? सिर्फ मरता है। फिर उसमें कोई जिंदगी नहीं रह जाती। सूखता है और मरता है। सूखता है और मरता है और गंदा होता चला जाता है। क्योंकि गंदगी, जब कोई नदी बहती है तो बह जाती है और नदी रोज फिर पवित्र हो जाती है। और तालाब? तालाब में तो पानी तो उड़ता जाता है, गंदगी ठहरती चली जाती है। धीरे-धीरे पानी तो नहीं रह जाता, कीचड़ रह जाती है, कचरा रह जाता है। वह कचरा इकट्ठा होता चला जाता है।

तो तालाब की जिंदगी होती है एक, एक नदी की जिंदगी होती है। जवान आदमी वही है जो उद्याम नदी के वेग से जीता हो, जो तालाब न बन जाए। और पूरा समाज जब नदी के वेग से जीता है, तो पूरा समाज जिंदा होता है। और जब पूरा समाज ही एक डबरे की तरह हो जाता है, तो मर जाता है। कई कौमों ने अपने आप को डबरा बना लिया है। और वे बड़ी गौरवांवित भी समझती हैं अपने को कि देखो हम कहीं बहते नहीं, हम कहीं जाते नहीं, हम तो जहां के तहां हैं। हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति बड़ी महान है। इसको कहीं जाना नहीं पड़ता, जहां की तहां ठहरी रहती है। लोग आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन हम वहीं के वहीं हैं। यह कोई गौरव

की बात है? यह कोई सम्मान की बात है? यह तो इस बात की खबर है कि हमने जीना छोड़ दिया है। वह जो डाइनैमिक, वह जो परिवर्तनशील, गत्यात्मक जीवन होना चाहिए, वह जा चुका है। निरंतर-निरंतर गत्यात्मक होना चाहिए।

युवक को तो सोचना चाहिए विद्रोह की भाषा में। लेकिन विद्रोह का क्या मतलब? विद्रोह का क्या यह मतलब है कि मकानों को जला दो, बसों में आग लगा दो, स्कूल के कांच फोड़ दो, शिक्षक का जीना हराम कर दो, यह विद्रोह का मतलब है? अगर यही विद्रोह का मतलब है, तो, तो बात दूसरी है, लेकिन यह विद्रोह का मतलब नहीं है, यह तो मूर्खता का मतलब हो सकता है विद्रोह का नहीं। विद्रोह तो बड़ी गहरी चीज है, विद्रोह तो मूल्यों को बदलने की बात है, वैल्यूज को बदलने की बात है। विद्रोह किसी बस पर पत्थर फेंकने का नाम नहीं है और न कहीं हड़ताल कर देने का नाम है। और जो हम चारों तरफ देख रहे हैं विद्रोह वह विद्रोह नहीं है। विद्रोह तो है जीवन जहां-जहां जकड़ गया हो, जिन-जिन मूल्यों ने जीवन को पकड़ लिया हो और उसकी गति को अवरुद्ध कर लिया हो, उन-उन मूल्यों को बदल देना। हजार-हजार जकड़नें हमारे ऊपर हैं, सारी मनुष्य-जाति के ऊपर, उनको तोड़ना है, वहां विद्रोह करना है।

लेकिन हमारे समाज के अगुआ बहुत होशियार हैं, वे विद्रोही न हो सके, असली विद्रोही न हो सके। इसलिए वे जवान को अंत्यंत टुटपुंजिया विद्रोह करना सिखा देते हैं, वे कहते हैं, पत्थर फेंको बस पर, जैसे बस पर पत्थर फेंकने से और मकान में आग लगा देने से कोई क्रांति होने वाली है। बल्कि सच यह है कि अगर लड़के यही करते रहे और उनकी ताकत इसी में लग गई, तो क्रांति कभी न हो पाएगी। और ये बहुत जो होशियार हैं हमारे समाज में शोषण करने वाले, उनके पक्ष में हैं, उनके हित में हैं। ऐसे में ऊपर से चिंता जाहिर करते हैं कि बहुत बुरा हो रहा है, लेकिन मन से वे इसे पसंद करते हैं कि यह होता रहे, युवक की ताकत इस बेवकूफी में लगी रहे। वह जिंदगी जैसी डबरे में बंद है वहीं बंद रही आएगी। वे चाहते हैं दिल से बहुत भीतर कि यही नासमझियां युवक करता रहे, तो असली क्रांति कभी नहीं कर पाएगा।

मैं तो आपसे कहूंगाः अगर अपने स्कूल के मास्टर के खिलाफ पड़ गए हैं, तो आप नासमझ हैं। अगर लड़ाई ही करनी है तो मनु महाराज से करो, बेचारे मास्टर से क्या करनी। मनु महाराज से लड़ाई लो, अगर लेनी है। मूल्य तीन हजार साल पहले जहां मनु छोड़ गए हैं वहीं रुक गए हैं, वहां से उन्हें आगे बढ़ाना है। वहां टक्कर है, वहां लड़ाई है। मुल्क को जिन्होंने गलत मूल्य दे दिए हैं उनसे लड़ाई है, उनसे टक्कर है। और वह लोगों से नहीं है वह मूल्यों से है, वैल्यूज से है, जो हमें पकड़ लेती है।

अब हिंदुस्तान में आज भी शूद्र हैं, यह बड़ी आश्चर्य की बात है! यह होना चाहिए क्या? आज भी हिंदुस्तान में अजीब-अजीब बातें हैं, जिनकी कि कल्पना करने में भी हंसी आती है। छोटी-छोटी टुच्ची बातों पर विरोध है--मराठी और गुजराती का विरोध है, हिंदी और गैर-हिंदी वाले का विरोध, हिंदू और मुसलमान का विरोध; आने वाले बच्चे हसेंगे हम पर। कैसे लोग थे? कैसे नासमझ? कैसे स्टुपिड? क्या बेवकूफियां करते थे? कैसी टुच्ची बातों पर लड़ते थे, आग लगाते थे, हत्या करते थे, हड़ताल करते थे? हैरान होंगे आने वाले बच्चे कि ये कैसे लोग थे? इन सबको तोड़ देना जरूरी है, इन सब दीवालों को तोड़ देना जरूरी है, इस तरह की नासमझियों को तोड़ देना जरूरी है। और सोचना जरूरी है। और सोचने से जो क्रांति आए, विद्रोह आए, वह बहुत शुभ होगा। इससे घबड़ाएं न।

पूछा है उन्हीं युवक नेः ऐसा जो विद्रोह है, ऐसी जो क्रांति है, ऐसा जो इंकलाब, ऐसा जो परिवर्तन है वह लाने के लिए एक अंधा विवेकहीन युवक कुछ भी नहीं कर सकेगा। चाहिए एक बहुत विचारपूर्ण, जाग्रत, बहुत ओज से भरा हुआ, बहुत विवेक से भरा हुआ, बहुत सावधान।

इतनी सावधानी और विचार से अगर युवक भरेगा तो क्रांति होगी। और उस क्रांति से हित होगा, मंगल होगा। सभी क्रांतियों से मंगल नहीं हो जाता है। अगर क्रांति करने वाला बेहोश है, नासमझ है, तो केवल तोड़-फोड़ करता है, बना कुछ भी नहीं पाता। असली क्रांति वह नहीं है जो केवल तोड़ती है, असली क्रांति तो वह है जो इसलिए तोड़ती है ताकि कुछ बनाया जा सके। जो इसलिए मिटाती है ताकि कुछ निर्मित किया जा सके। जो जमीन को इसलिए खाली करती है पुराने से ताकि नये का भवन खड़ा हो सके। लेकिन विवेक-शून्यता केवल तोड़ती है। विवेक निर्मित करता है, वह विवेक चाहिए, उस विवेक की जागृति चाहिए। वह विचार करने से जीवन के संबंध में पैदा होगी। हम तो विचार करते नहीं हैं, हमने तो मान रखी हैं बातें जो किसी ने कह दी हैं। और जब भी हम मान लेते हैं और विचार नहीं करते, तो हमारे भीतर विवेक कैसे पैदा होगा? हमें हजारों साल से कोई बात कह दी जाती है और हम मानते चले जाते हैं। न हम संदेह करते हैं, न हम विचार करते हैं, न हम ठिठक कर खड़े होते हैं और न पूछते कि यह क्या है? यह सच है? यह ठीक है? हमारा युवक भी नहीं सोच रहा है।

एक डाक्टर के साथ मैं उनके घर से निकला, किसी मरीज को दिखाने ले जा रहा था। एक बिल्ली रास्ता काट गई। वे डाक्टर मुझसे बोले, दो मिनट ठहर जाएं। मैंने कहाः आप ठहरें, मैं किसी दूसरे डाक्टर को लेकर जाऊंगा। उन्होंने कहाः क्यों? मैंने कहाः जो डाक्टर बिल्ली के काटने से रुकता हो, उसकी डाक्टरी पर मुझे शक हो गया है, यह आदमी डाक्टर होने के लायक नहीं है। इसके मन में कोई वैज्ञानिकता नहीं है। बिल्ली के काटने से रास्ता और एक डाक्टर रुकेगा? एक इंजीनियर रुक जाएगा कि उसको छींक आ गई? एक पढ़ा-लिखा आदमी? एक बेचारे ऐसे गरीब आदमी को जिसके पास एक ही आंख है, उसको देख कर दुर्भाग्य समझेगा अपना। तो फिर ऐसे युवक क्या क्रांति लाएंगे? क्या करेंगे? कौन सी वैज्ञानिकता पैदा करेंगे? तो फिर जिंदगी में बहुत विवेक और विचार चाहिए कि हम क्या कर रहे हैं? निरंतर अपने से पूछना चाहिए, निरंतर प्रश्न खड़े करने चाहिए, निरंतर संदेह करना चाहिए, सतत खोज जारी रखनी चाहिए कि यह क्या हो रहा है?

हमारे मुल्क में तो हमने विचार करना कई हजार साल से बंद कर दिया है। हमने वह तकलीफ उठानी ही बंद कर दी है। वह हमने दो-चार लोगों पर छोड़ दिया है। हे भगवान कृष्ण! तुम सोचो और गीता दे दो, हम उसी को सम्हाले रखेंगे, हमें क्यों परेशान करते हो? आपने किताब दे दी, अब हमारा काम है कि हम इसको पढ़ें, इसको सिर नवाएं और गुणगान करें। और हमें कोई करना नहीं है। हे भगवान महावीर! अब तुमने सब सोच लिया है, तुम सर्वज्ञ हो, तुमने सब बता दिया, अब हममें से किसी को भी सोचने की जरूरत नहीं। अब हम सोचने को छुट्टी देते हैं, अब सोचने-विचारने की इस देश में कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि सर्वज्ञ हो चुके, और उन्होंने जो कह दिया, वह पूरा हो गया। इस नासमझी का हम फल भोग रहे हैं। उसकी वजह से हमारे मुल्क में कोई विवेकपूर्ण क्रांति नहीं पैदा हो पा रही। क्योंकि हमने सब छोड़ दिया है किसी और पर।

जो आदमी सोचना तक दूसरे पर छोड़ दे, उससे अभागा कोई आदमी हो सकता है? फिर उसके पास बचा क्या आदमी कहने लायक? सोचने की ही ताकत थी जो उसे मनुष्य बनाती थी, वही उसने त्याग दी। अब वह केवल एक अनुकरण करने वाला, पीछे चलने वाला हो गया है।

मैं तुमसे प्रार्थना करूंगाः निश्चित ही विद्रोही बनो, लेकिन तुम्हारा विद्रोह विवेक पर खड़ा हो, निरंतर विचार से जन्मे, तो तुम्हारे विद्रोह से अहित नहीं होगा, मंगल सिद्ध होगा, सबका हित होगा उसमें। और हर

चीज पर विद्रोह की जरूरत है। कुछ ऐसा नहीं है कि किसी एक बात पर, अब मैं उस विस्तार में नहीं जा सकूंगा, लेकिन हर मुद्दे पर हर चीज पर बुनियादी विद्रोह और चिंतन की जरूरत हो गई है। पूछना जरूरी हो गया है फिर से, असल में कोई भी कौम बार-बार पूछ लेती है, बार-बार नाप-जोख कर लेती है, नहीं तो भूल में पड़ जाती है।

छोटा बच्चा है, उसके लिए हम कपड़े बनवाते हैं, फिर जवान हो जाए, और वही कपड़े पहने रहे, या तो हम उसको पागल कहेंगे कि यह आदमी पागल है, जो पांच साल के बच्चे के लिए काफी थे, वह यह पचास साल की उम्र में पहने हुए है। वही कपड़े पहने हुए है, इसने सोचा भी नहीं, पूछा भी नहीं कि मैं बदल गया हूं, अब कपड़े का बदल लेना जरूरी है। रोज जिंदगी बदल रही है, रोज समय बदल रहा है, जीवन की धारा रोज-रोज नई-नई जगहों को पार कर रही है। नई समस्याएं हैं, नये प्रश्न हैं और हम पुराने कपड़ों में ही कैद। और हमने जिद्द कर रखी है कि अगर गड़बड़ है तो आदमी को काट-छांट कर छोटा कर दो, लेकिन हम कपड़े नहीं बदलेंगे। आदमी के पैर थोड़े छोटे कर दो, हर्जा क्या है? थोड़े हाथ काट कर छोटा कर दो, इसको कहो कि थोड़ा व्यायाम करो, प्राणायाम करो, छोटे बने रहो, बड़े मत बनो। इसको ही समझाओ कि आसन करो, वगैरह करो। लेकिन कपड़े यही ठीक रहेंगे। तुम छोटे रहो, तुम बड़े मत हो जाना। यह आदमी की गलती है अगर यह बड़ा होता है तो। बदलता है तो कपड़े की क्या गलती, कपड़ा तो बेचारा बहुत अच्छा है। और पूर्वज जिस कपड़े को बना गए, बेटों का फर्ज है कि उसी को पहने? यही उनका कर्तव्य है? यही पिताओं के प्रति उनकी आदर-भावना है? श्रद्धा है? यह आदर है? यह श्रद्धा है? अगर वे बापदादे वापस लौट आएं, वे ऐसे नालायक बच्चों को देख कर हैरानी से भर जाएंगे कि हमने जो कपड़े इनके बचपन के लिए बनाए थे, ये बुढ़ापे में पहने हुए हैं। अगर वे वापस लौट आएं, तो हैरान होंगे कि ये कैसे लोग हैं? हमने तीन हजार साल पहले जो बात कही थी, ये उसको पकड़ कर अभी बैठे हुए हैं, बीसवीं सदी में भी वही चलाए जा रहे हैं। सिर पीट लेंगे अपना हमारे नाम पर। और हम सोच रहे हैं हम उनको आदर दे रहे हैं।

जिंदगी रोज बदल जाती है, जिंदगी की समस्याएं बदल जाती हैं, इसलिए समाधान बदलने पड़ते हैं। कौन बदलेगा यह? ये विचारशील, विचारशील युवक चाहिए, जो सोचे, देखे और बदले। तो क्रांति से भयभीत होने की जरूरत नहीं। उसका भी स्वागत जरूरी है।

एक युवक ने पूछा है कि पाकिस्तान से लड़ाई के वक्त, चीन से लड़ाई के वक्त, या सीमांत पर जब भी उपद्रव होता है, तो हम अपने अहिंसा के सिद्धांत का क्या करें?

सिद्धांतों को आग जला कर उसमें डाल देना चाहिए। सिद्धांतों की कोई जरूरत नहीं है। जिंदगी की जरूरत है। सिद्धांत सब झूठे होते हैं, वक्त पर काम नहीं आते। अगर कोई आदमी अहिंसक होगा तो वह यह पूछेगा कि अब युद्ध आ गया है तो हम अहिंसा का क्या करें? जब युद्ध नहीं था तब अहिंसा की जरूरत नहीं थी और अब युद्ध आ गया है तो हम अहिंसा का क्या करें? अगर मैं प्रेमपूर्ण हूं और आप मुझे गाली दे दें, तो मैं पूछूंगा कि अब मैं अपने प्रेम का क्या करूं? यह आदमी मुझे गाली दे रहा है, मैं शांत था और एक आदमी ने आकर मेरा अपमान कर दिया, तो मैं यह पूछूंगा कि अब मैं अपनी शांति का क्या करूं? यह आदमी मेरा अपमान कर रहा है? अगर कोई मेरा अपमान न करता तो मैं शांत बना रहता, अब तो बड़ी मुश्किल की बात हो गई, अब तो यह शांति के सिद्धांत का क्या हो? सिद्धांतों की कसौटी तब होती है जब उनके प्रतिकूल परिस्थिति खड़ी हो जाती है। चीन और पाकिस्तान के उपद्रवों ने यह जाहिर कर दिया कि हमारी सब अहिंसा

की बातचीत बकवास और झूठी थी। इस सत्य को हम नहीं देखेंगे। हम फिर वही पुरानी बकवास दोहराए चले जाएंगे जो कि वक्त पर काम नहीं आई।

हमें जानना चाहिए, ठीक से जान लेना चाहिए कि हम केवल अहिंसा की बातें करने वाले लोग हैं। अहिंसा से हमारा कोई संबंध नहीं है। इसलिए यह कोई मुसीबत न हो तो हम मंदिरों में अहिंसा के प्रवचन चलाते हैं और किताबें छापते हैं और अहिंसा परमोधर्मः का गुणगान करते हैं और झंडों पर लिखते हैंः अहिंसा परमोधर्मः। और जब प्रतिकूल परिस्थिति आ जाती है, तो हम कहते हैं, अब तो हमें अहिंसा की रक्षा के लिए तलवार उठानी ही पड़ेगी। बड़ी मजे की बात है, अहिंसा की रक्षा के लिए तलवार उठानी पड़ेगी? तो अहिंसा इतनी कमजोर है कि उसको अपनी रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत पड़ती है? तो ऐसी कमजोर अहिंसा को छुट्टी करो, इसकी कोई जरूरत नहीं है। जो वक्त पर हिंसा का सहारा जिसे खुद ही खोजना पड़ता हो तो ऐसी अहिंसा को हम क्या करेंगे? लेकिन हमने धोखा दिया है अपने आप को। हम कुछ बातें कर-कर के, शोरगुल मचा-मचा कर यह समझने लगे हैं कि हम अहिंसक हैं। अहिंसक होना इतना सस्ता नहीं है। धर्म इतना सस्ता नहीं है। अहिंसक होना बड़ी तपश्चर्या सेगुजर जाना है। अहिंसक होने का मतलब हैः जिस व्यक्ति के हृदय से घृणा के, क्रोध के, ईर्ष्या के, प्रतिहिंसा के, महत्वाकांक्षा के, एंबीशन के समस्त द्वार समाप्त हो गए हैं, जिसका हृदय प्रेम की एक धारा बन गया है। फिर, फिर उसके साथ कुछ भी स्थिति खड़ी हो जाए, वह मरने को राजी हो जाएगा, लेकिन यह नहीं पूछेगा, अब अहिंसा के सिद्धांत का क्या करें। तो बात ही नहीं है पूछने की।

बुद्ध का एक शिष्य था, पूर्ण। उसकी दीक्षा पूरी हो गई, उसकी शिक्षा पूरी हो गई। उसने बुद्ध से कहाः अब मैं जाऊं और आपने जो प्राणवान संदेश मेरे हृदय में फूंका है, मैं उसकी खबर दूर हवाओं तक पहुंचा दूं, दूर किनारों तक जमीन के।

बुद्ध ने कहाः जरूर जाओ, लेकिन इसके पहले कि तुम जाओ मैं कुछ पूछना चाहता हूं। कहां तुम जाना जाहते हो? किस प्रदेश में? बिहार का एक छोटा सा इलाका था, सूखा, उसने कहा, मैं सूखा की तरफ जाऊंगा, वहां अब तक कोई भी भिक्षु नहीं गया है।

बुद्ध ने कहाः वहां न जाओ तो अच्छा है, तुम युवा हो, अभी नये हो। कहीं और जगह चुन लो तो अच्छा है।

पूर्ण ने कहाः क्यों ऐसा कहते हैं?

बुद्ध ने कहाः वहां के लोग बहुत बुरे हैं। हो सकता है, तुम जाओ, वे गाली-गलौज दें, बुरे भले शब्द कहें, तो तुम्हारे मन को क्या होगा?

पूर्ण ने कहाः यह भी आप मुझसे पूछते हैं? अगर वे मुझे गाली देंगे, अपशब्द कहेंगे, अपमान करेंगे, तो मेरे मन को होगा, भले लोग हैं, सिर्फ गाली देते हैं, इतना ही क्या कम है, मार-पीट भी तो कर सकते थे।

बुद्ध ने कहाः और यह भी हो सकता है कि वे मार-पीट करें, फिर क्या होगा?

तो पूर्ण ने कहाः होगा मेरे मन को भले लोग हैं, सिर्फ मारते हैं, मार भी तो डाल सकते थे।

बुद्ध ने कहाः अंतिम बात और पूछे लेता हूं, फिर कुछ भी नहीं पूछूंगा। और अगर उन्होंने तुम्हें मार ही डाला, तो मरते क्षण में तुम्हारे मन को क्या होगा?

पूर्ण ने कहाः धन्यवाद दूंगा उन लोगों का, भले लोग हैं, उस जीवन से छुटकारा करवा दिया जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी।

बुद्ध ने कहाः अब तुम कहीं भी जाओ। अब सारा जमीन तुम्हारा घर है और सब तुम्हारे मित्र हैं। क्योंकि जिसके हृदय में ऐसी अहिंसा का जन्म हो गया हो उसका कोई भी शत्रु नहीं है।

इस आदमी को तो हम अहिंसक कह सकते हैं, लेकिन 'अहिंसा परमोधर्मः' की जय लगाने वालों को नहीं। बेईमान, अपने आप को धोखा देने का हम बहुत रास्ता खोज लेते हैं, हम बहुत बेईमान हैं। अहिंसा का नारा

लगाते हैं, हिंसा भीतर सुलगती रहती है। उसी सुलगने की वजह से जोर-जोर से नारा लगाते हैं। वह जो भीतर सुलग रही है हिंसा, वह जो भीतर चल रहा है क्रोध, वह जो भीतर उबल रही है सब कुछ, और जोर-जोर से नारा लगाते हैं और जोर-जोर से कूदते हैं, झंडा उठाते हैं। और अगर पड़ोस में कोई दूसरा झंडा उठा ले और तुमसे जोर से नारा लगाने लगे, तो तुम दोनों में झगड़ा भी हो सकता है। कि हम श्वेतांबर अहिंसावादी हैं, तुम दिगंबर अहिंसावादी हो, यह नहीं चल सकता। हम और हैं, तुम और हो, आ जाओ फिर, कौन सबसे बड़ा अहिंसावादी है इसको सिद्ध ही करना पड़ेगा। तो अदालत में भी जा सकते हैं, लकड़ी भी चला सकते हैं, हिंसा भी कर सकते हैं, क्योंकि अहिंसा की रक्षा के लिए इन सबकी जरूरत पड़ जाती है। यह हम सब कर सकते हैं।

यह कोई अहिंसा-वहिंसा नहीं, सब झूठी बातचीत है। और बहुत झूठी बातचीत में हम पड़े रहे हैं। और जब तक इस झूठी बातचीत में हम पड़े रहेंगे तो दुनिया में अहिंसा का कैसे जन्म हो सकेगा? एक दुनिया चाहिए जिसमें अहिंसा का जन्म हो। जरूर चाहिए, बिना अहिंसा के मनुष्य का कोई हित नहीं है, कोई मंगल नहीं है। लेकिन कौन लाएगा यह अहिंसा? अहिंसा की बातचीत करने वाले लोग या वे लोग जो अपने हृदय को एक बार प्रेम की क्रांति से गुजर जाने दें? अहिंसा सिद्धांत नहीं है, अहिंसा तो जीवंत प्रेम का नाम है। सिद्धांत की मत पूछें। सिद्धांतों से क्या लेना-देना है? सिद्धांत किसके काम पड़ते हैं? जीवंत प्रेम का नाम है अहिंसा, उसे अपने भीतर पैदा होने दें। और वह जिस दिन पैदा हो जाएगी, उस दिन आपके लिए कोई पाकिस्तानी नहीं है, कोई चीनी नहीं है। तो अहिंसक के लिए कोई अपना देश नहीं, कोई पराया देश नहीं। जो यह न कहता हो कि भारत पर पाकिस्तान का हमला हुआ, बल्कि जो यह कहता है कि भारत और पाकिस्तान की लड़ाई दुर्भाग्यपूर्ण है। जब हम कहते हैं कि भारत पर हमला हुआ, तो हम भारत के हो जाते हैं और दूसरा हमलावर हो जाता है।

दुनिया में ऐसे लोग चाहिए जो हर झगड़े को गृहयुद्ध के रूप में देखें, एक-दूसरे के ऊपर हमले की शक्ल में नहीं। जैसे घर के दो आदमी लड़ पड़े हों, इस तरह से देखें। जो आदमी अहिंसक है वह ऐसे ही देखेगा कि घर के दो लोग लड़ रहे हैं, एक गृहयुद्ध हो रहा है। पाकिस्तान और हिंदुस्तान के भाई लड़ रहे हैं। कोई इस तरह देखेगा, जिसके मन में अहिंसा है। और वैसा आदमी युद्ध समाप्त हो इसका मार्ग खोजेगा। इसके लिए श्रम करेगा, हो सकता है इसके लिए उसे मरना भी पड़े, तो मरेगा। इस भाषा में वह नहीं सोचेगा कि मेरे देश पर हमला हो गया है तो अब, अब अहिंसा के सिद्धांत का क्या करें? जो आदमी कहता है, मेरा देश, उसने तो हिंसा को स्वीकार कर लिया। यह मेरा और दूसरे का देश हिंसा के आधार पर खड़ी की गई सीमाएं हैं। सब दुनिया की सीमाएं वायलेंस की, हिंसा की सीमाएं हैं। प्रेम की कोई सीमा होती है? मैं अगर प्रेम से भर जाऊंगा तो मैं यह कहूंगा कि मेरा प्रेम, देख कर चलना, पाकिस्तान की सीमा आ गई, इसके आगे मत जाना, इधर अपना देश नहीं है। मेरे भीतर प्रेम पैदा होगा तो पाकिस्तान की सीमा पर ठिठक कर रुक जाएगा कि देखना इधर बगल में मुसलमान रहता है, यह अपने वाला नहीं, इधर मत जाना। प्रेम कहीं रुकेगा, अगर पैदा होगा। प्रेम कोई सीमा नहीं मानता, प्रेम असीम है। और जहां-जहां सीमाएं हैं वहां-वहां हिंसा है, वहां-वहां घृणा है। ये देशों की सीमाएं भी हिंसा की सीमाएं हैं। इसलिए अहिंसक देश को स्वीकार नहीं करता और न अहिंसक किसी देश का नागरिक हो सकता है। नागरिक से मेरा मतलब सामान्य काम-काज के अर्थों में नहीं, राजनैतिक चित्तता के अर्थ में, पॉलिटिकल अर्थ में। कोई नागरिक किसी देश का नहीं हो सकता, अहिंसक व्यक्ति तो विश्व नागरिक होगा। दुनिया में ऐसे लोगों की जरूरत है जो छोटे-छोटे देशों की क्षुद्र सीमाओं से अपने को मुक्त करें, छोटे संप्रदायों की सीमाओं से मुक्त करें, तभी शायद एक ऐसी मनुष्यता का जन्म हो सके जहां युद्ध न होते हों, जहां युद्ध समाप्त हो जाएं।

लेकिन राजनैतिक नहीं मान सकता यह कि सीमाएं न हों। क्योंकि जिस दिन सीमाएं नहीं हैं उस दिन राजनीतिज्ञ भी नहीं। वह उसी के साथ जुड़ा हुआ है। उस दिन वह नहीं बच सकेगा। इसलिए राजनीतिज्ञ बड़ा

मोह रखता है सीमा का। नक्शे बनाता है और सीमाएं बनाता है। और लड़ता है और लड़वाता है। एक-एक इंच जमीन के लिए करोड़ों-करोड़ों लोगों को कटवाता है। और बड़ा मजा यह है कि जमीन किसके लिए है यह? जमीन के लिए लोग कटते हैं। और जमीन इसलिए है कि लोग इस पर रहें। जमीन लोगों के लिए है कि लोग जमीन के लिए हैं? सीमाएं किसके हित के लिए हैं, इसलिए कि इस पर लोग रोज कटें? अगर इसीलिए ये सीमाएं हैं लोगों के कटने के लिए तो यह किसके मंगल में हैं, किसके हित में हैं? वह दुनिया करीब आ रही है, जो जवान हैं, जो नई पीढ़ी के लोग हैं वे उस तरफ देखें और उस तरफ श्रम करें। एक दुनिया आए जहां कोई सीमाएं न हों, क्षुद्र टुकड़े न हों। मनुष्यता इकट्ठी खड़ी हो सके, ऐसे श्रम में वही लग सकता है जिसका हृदय प्रेम और अहिंसा से भरा हुआ है।

प्रश्न तो और भी बहुत हैं, लेकिन अब कठिन होगा कि मैं और प्रश्नों के उत्तर दूं, एक छोटी सी बात कहूंगा और अपनी चर्चा को पूरा करूंगा।

एक युवक ने पूछा हैः पूरब के ऊपर पश्चिम का प्रभाव पड़ रहा है, क्या यह शुभ है? अध्यात्म के ऊपर भौतिकता का प्रभाव पड़ रहा है, क्या यह शुभ है?

एक छोटी सी कहानी है, मैं अपनी चर्चा पूरी कर दूंगा।

रोम में एक बादशाह बीमार पड़ा, उसकी चिकित्सा होनी कठिन हो गई। वह मरने के करीब आ गया। उसके चिकित्सकों ने अंततः कहा, किसी शांत और समृद्ध व्यक्ति का कोट लाकर यदि राजा को पहना दिया जाए, तो राजा ठीक हो सकता है। और तब तो हर घर यही बात सुनाई पड़ने लगी, वजीर घबड़ाया, साथ में भागते नौकर को उसने कहा, अब क्या होगा? उस नौकर ने कहाः मैंने तो पहले ही समझ लिया था कि यह इलाज बहुत कठिन मालूम होता है। क्योंकि जब आपने यह सुना, आप खुद अपना कोट लेकर नहीं आए, और दूसरे के घर कोट पूछने को गए, आप बड़े वजीर हो राजा के, तभी मैं समझ गया था कि यह कोट मिलना मुश्किल है। क्योंकि यह आदमी को खुद यह ख्याल नहीं आता कि मेरा कोट काम आ जाए। वजीर ने कहाः कोट तो मेरे पास बहुत हैं, समृद्धि भी बहुत, लेकिन शांति कहां? फिर तो साफ था कि कोट नहीं मिला। लेकिन दिन के उजाले में कैसे जाए राजा के पास, क्या मुंह लेकर? रात हो गई, सूरज ढल गया, तो वजीर चला चुपके-चुपके अंधेरे में। जाकर राजा के पैरों में सिर रख कर रो लेगा कि यह इलाज नहीं हो सकता। नहीं कोई आदमी मिलता जो सुखी भी हो और शांत भी। समृद्ध लोग हैं, लेकिन वे शांत नहीं।

महल के पास नदी के किनारे धीरे-धीरे चलता था डरा हुआ, भयभीत, क्या मुंह लेकर जाएगा। तभी सुनाई पड़ी उस पार से बांसुरी की आवाज। कोई बहुत, बहुत मधुर स्वरों में गीत गाता था। बड़ी शांति थी उन स्वरों में। एक आशा बंधी, उसके पैर वापस लौट पड़े। वह भागा हुआ उस आदमी के पास पहुंचा, सोचा शायद यह आदमी शांत मालूम पड़ जाए। शांत हृदय से ही ऐसा संगीत पैदा हो सकता है। उसके पास गया, हाथ जोड़ कर अंधेरे में खड़ा हो गया, जैसे ही उसने बांसुरी बंद की, उसने कहा कि मेरे मित्र, कृपा करो, और देखो इनकार मत कर देना, मैं बहुत द्वारों से इनकार पा चुका हूं। राजा मरणासन्न है, बचा लो उसे। तुम्हारे कोट की जरूरत है। चिकित्सक ने कहा है किसी शांत और समृद्ध आदमी का कोट मिल जाए। तुम शांत हो न, देखो न मत करना। उस आदमी ने कहा कि मैं बिल्कुल शांत हूं और मैं अपने प्राण भी दे सकता हूं बचाने के लिए, लेकिन अंधेरे में तुम देख नहीं रहे, मैं नंगा बैठा हुआ हूं, कोट मेरे पास नहीं है।

राजा उस रात मर गया। कुछ लोग मिले जिनके पास कोट थे, लेकिन शांति नहीं थी। एक आदमी मिला जिसके पास शांति थी, लेकिन वह नंगा था। राजा मर गया।

अब तक दुनिया में ऐसी ही हालत रही है। पूरब के मुल्कों ने शांति की खोज की, कोट खो दिया। पश्चिम के मुल्कों ने कोट के ढेर लगा लिए, शांति खो दी। और आदमी मरणासन्न है।

और मैं कहता हूं कि किसी ऐसे आदमी का कोट चाहिए जो शांत भी हो सुखी भी हो, तो आदमी बच सकेगा, नहीं तो अब आदमी मरेगा। और ये पूरब-पश्चिम के झगड़े मत खड़े करो, यह भौतिक और अध्यात्म का भेद मत खड़ा करो। एक ऐसा आदमी चाहिए जो सुखी भी हो और शांत भी। इसलिए आने वाली दुनिया में पूरब-पश्चिम दोनों मिट जाने चाहिए। आने वाली दुनिया में एक संस्कृति पैदा होनी चाहिए अखंड, पूरब और पश्चिम की एक, धर्म और विज्ञान की एक, शरीर और आत्मा की एक। सुख और शांति को एक साथ खोजनी वाली संस्कृति को जन्म देना है। वही संस्कृति पूर्ण संस्कृति होगी। अब तक की सब संस्कृतियां अधूरी रही हैं। और अब बड़ा खतरा हो गया है, आदमी बीमार पड़ा है, आदमी... वह राजा मर जाता तो हर्जा नहीं था, राजा पैदा होते हैं। वापस अब आदमी बीमार पड़ा है, पूरी आदमियत बीमार पड़ी है। अब पूरब और पश्चिम अगर न मिल पाए तो यह आदमी नहीं बच सकेगा।

अंत में मैं यही कहता हूं, अब तक हमने धर्म को और विज्ञान को अलग तोड़ कर देखा, शरीर और आत्मा को अलग तोड़ कर देखा, अब यह नहीं चलेगा, इनको जोड़ कर देखना पड़ेगा। आदमी अखंड है। और पूरे मनुष्य की तृप्ति चाहिए--उसके भीतर शांति होनी चाहिए, उसके बाहर सुख। उसके बाहर समृद्धि होनी चहिए और भीतर संगीत होना चाहिए। इसमें कोई दोनों में विरोध नहीं है।

फिर दुबारा आपके पास कभी आऊंगा। आपके बहुत प्रश्न कायम रह गए, उनकी चर्चा करूंगा। तब तक और भी प्रश्न पैदा हो जाएंगे। जो छूट गए प्रश्न उनके लिए क्षमा मांगता हूं, जिनके प्रश्न छूट गए हों।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पांचवां प्रवचन

मन का पात्र कभी भरता नहीं

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

एक राजमहल के द्वार पर बहुत भीड़ लगी हुई थी। भीड़ सुबह से लगनी शुरू हुई थी, दोपहर आ गई थी और भीड़ बढ़ती चली गई थी। जो भी उस द्वार पर आकर रुका था वह रुका ही रह गया था। वहां कोई बड़ी अभूतपूर्व घटना घट गई थी। और जिसको भी राजधानी में खबर लगी वह भागा हुआ महल की तरफ चला आ रहा था। सांझ भी आ गई। करीब-करीब सारी राजधानी महल के द्वार पर इकट्ठी हो गई थी। लाखों लोग इकट्ठे थे।

उस द्वार पर सुबह-सुबह एक भिक्षु आया था। और उस भिक्षु ने राजा से कहा था, मुझे कुछ भिक्षा मिल सकेगी? राजा ने कहा था कोई कमी नहीं है, तुम जो चाहो मांग लो। उस भिखारी ने एक बड़ी अजीब शर्त रखी। उसने कहा कि मैं भिक्षा तभी लेता हूं जब मुझे यह आश्वासन मिल जाए, यह वचन मिल जाए कि मेरा पूरा भिक्षापात्र भर दिया जाएगा। मैं अधूरा भिक्षापात्र लेकर नहीं जाऊंगा। तो यदि यह वचन देते हों कि मेरा पूरा भिक्षापात्र भर देंगे तो मैं भिक्षा लूं अन्यथा मैं किसी और द्वार पर चला जाऊं।

ऐसा शर्त वाला भिखारी कभी देखा नहीं गया था। और यह शर्त कोई इतनी बड़ी भी न थी कि राजा के द्वार से उसे लौटना पड़े। राजा हंसा और उसने कहाः तुमने मुझे क्या समझ रखा है, क्या मैं तुम्हारे इस छोटे से भिक्षा पात्र को न भर सकूंगा? शायद तुम सोचते हो कि मैं धन-धान्य में कुछ कम हूं और एक भिखारी का भिक्षा पात्र भी न भर सकूंगा?

उसने अपने वजीरों को कहा कि जाओ और अन्न के दानों से नहीं बल्कि हीरे-मोतियों से इसके भिक्षापात्र को भर दो। उसने कहाः शर्त मुझे स्वीकार है। राजा हंसा था यह कह कर। लेकिन भिखारी भी हंसा और उसने कहाः एक बार फिर सोच लें, क्योंकि न मालूम कितने लोगों ने यह शर्त स्वीकार की है और वे इसे पूरा नहीं कर पाए।

राजा ने कहाः कैसी पागलपन की बातें करते हो। वजीर से कहा, समय मत खोओ, जाओ और उसके भिक्षापात्र को बहुमूल्य पत्थरों से भर दो। वजीर बहुत से हीरे-मोती लेकर आया। उस राजा के पास कोई कमी न थी हीरे-मोतियों की। अकूत उसके खजाने थे। और उस भिखारी के भिक्षापात्र में डाले। लेकिन डालते ही भूल पता चल गई। भिक्षापात्र में डाले गए मोती-हीरे कहीं खो गए और पात्र खाली का खाली रहा। फिर और लाकर डाले गए फिर और लाकर डाले गए और वे जो अकूत खजाने थे वे खाली होने लगे। सुबह की दोपहर आ गई भिक्षापात्र खाली का खाली रहा।

राजा घबड़ाया, कठिनाई खड़ी हो गई थी। वचन दिया था। लेकिन न मालूम कैसा था यह भिक्षापात्र? सांझ हो गई। राजा भी अड़ा हुआ था कि भर देगा उसे। लेकिन राजा भी छोटा पड़ गया। भिक्षापात्र बहुत बड़ा था। वह नहीं भरा, नहीं भरा। और सांझ आखिर राजा को उस भिक्षु के पैरों पर गिर जाना पड़ा और माफी मांग लेनी पड़ी। उसने कहा कि मुझे माफ कर दें, भूल हो गई।

लेकिन मैं यह पूछना चाहता हूं और यह उत्तर मिल जाएगा तो मैं समझूंगा कि मैं माफ कर दिया गया। यह भिक्षापात्र क्या है? यह कोई जादू है? यह क्या है रहस्य? यह क्या है मिस्ट्री? छोटा सा पात्र है और भरता नहीं और मेरे खजाने खाली हो गए हैं?

उस भिक्षु ने जो कहा, उसने कहाः न तो कोई जादू है और न कोई रहस्य। मैं एक मरघट से निकलता था, एक आदमी की खोपड़ी पड़ी मिल गई, उससे ही मैंने यह भिक्षापात्र बना लिया। और मैं खुद ही हैरान हो गया यह भरता नहीं है। सच्ची बात यह है आदमी की खोपड़ी कभी भी भरी नहीं है।

उस राजमहल के द्वार पर यह जो घटना घटी थी। कोई रहस्य नहीं है इसमें, कोई मिस्ट्री नहीं है। हम सब जानते हैं कि हमारी खोपड़ी भरती नहीं है। मनुष्य का मन कुछ ऐसा बना है कि भरता नहीं है। और मनुष्य को मन के भरने की जो दौड़ है, वही संसार है। और इस सत्य को जान लेना कि मनुष्य का मन भरता नहीं, धर्म की शुरुआत है, धर्म का प्रारंभ है।

धर्म से मेरा कोई संबंध हिंदू और मुसलमान और ईसाई और जैन से नहीं है। ये धर्म हैं भी नहीं। अगर ये धर्म होते तो दुनिया धार्मिक हो गई होती। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है। और इस होने की वजह से ही वह धार्मिक नहीं है। धार्मिक होना कुछ बात ही और है। धार्मिक होना एक आंतरिक क्रांति है, एक रिवोल्यूशन है जो चित्त में घटित हो जाती है। उसका कोई एफलिएशन से, कोई आर्गेनाइजेशन से, कोई संगठन, किसी मंदिर और चर्च से कोई वास्ता नहीं है।

धर्म का संबंध है मनुष्य के मन से। अगर कोई मंदिर है, तो मनुष्य का मन है। और अगर कहीं कोई सत्य और परमात्मा है, तो वहीं खोजा जाना है। जो किन्हीं और मंदिरों में खोजते हैं वे भटक जाते हैं। क्योंकि वे सब मंदिर बाहर होंगे। और बाहर के मंदिर और बाहर के मकानों में कोई फर्क नहीं। भीतर है कोई, और वह भीतर जो मंदिर है उसकी खोज उसी दिन शुरू होती है जिस दिन यह भ्रम टूट जाता है कि इस मन को भरने की दौड़ व्यर्थ है, यह दिखाई पड़ जाता है। जब तक हम इस मन को भरने की दौड़ में होते हैं तब तक न समय होता है और न फुर्सत होती है कि हम उसे खोजें जो भीतर है। क्योंकि मन की इस दौड़ को भरने कि लिए हमें बाहर दौड़ना पड़ता है। भीतर जाने का अवकाश नहीं मिलता, समय नहीं मिलता, सुविधा नहीं मिलती।

मन को भरना है तो बाहर दौड़ना पड़ता है और परमात्मा को जानना है तो भीतर। जो बाहर दौड़ रहा है वह भीतर नहीं देख पाए इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हम सब बाहर दौड़ रहे हैं। और हम सबका आज तक का भी अनुभव वही है जो उस राजमहल के उस राजा को हुआ था।

हममें से कौन कितना भर गया है? और क्या यह सीधा सा तर्क और सीधा सा अनुमान नहीं कि आज तक हम दौड़े हैं और भरे नहीं, तो कल भी हम दौड़ेंगे तो भर कैसे जाएंगे? आज तक हम सब दौड़े हैं और खाली हैं, लेकिन कल की आशा दौड़ाए चली जाती है कि कल भर जाएं शायद। और दौड़ें, और दौड़ें, कल शायद वह फुलफिलमेंट मिल जाए, वह पूर्णता मिल जाए जिसकी तलाश और खोज है। लेकिन जो दौड़ता है बाहर वह उसे कभी न पा सकेगा। शायद मनुष्य के निर्माण के समय ही कोई बात हो गई जिसकी वजह से यह नहीं हो सकता।

मैंने एक बड़ी काल्पनिक कथा सुनी है। मैंने सुना है कि परमात्मा ने आदमी को बनाया। और यह आपको पता है, आदमी को बनाने के बाद उसने फिर कुछ भी नहीं बनाया। आदमी को बना कर वह घबड़ा गया होगा और उसने बनाने का अपना सारा काम बंद कर दिया होगा। और आदमी से शायद वह डर गया होगा उसकी आशा न थी कि ऐसा आदमी बन जाएगा और शायद, पुरानी कथा है, वह इतना डर गया अपने ही बनाए हुए आदमी से कि उसने देवताओं से पूछा कि आज नहीं कल यह आदमी मुझे परेशान करने लगेगा। मुझे कोई छिपने की जगह बता दो जहां मैं छिप जाऊं और यह आदमी मुझे न खोज सके।

तो अलग-अलग सुझाव आए, बड़े प्रस्ताव आए, किसी ने कहा, दूर हिमालय में, पहाड़ों में छिप जाओ। परमात्मा हंसा और उसने कहा कि जो आदमी है, हिमालय इसके लिए बहुत दूर नहीं है, यह वहां पहुंच जाएगा। किसी ने कहा चांद-तारों में छिप जाओ। परमात्मा ने कहाः थोड़ी बहुत देर छिपे रह सकते हैं, लेकिन यह आदमी जैसा मैंने बना लिया है यह वहां पहुंच ही जाएगा। फिर किसी ने उससे कहा, फिर एक ही रास्ता है, इसी आदमी के भीतर छिप जाओ। परमात्मा राजी हो गया। यह सुझाव बड़ा उचित और बड़ी समझदारी का था। क्योंकि आदमी और सब जगह ढूंढेगा, शायद ही उसे ख्याल आए कि उसके भीतर भी ढूंढने को कुछ है।

कहानी तो काल्पनिक है, लेकिन बात बड़ी सच है। आदमी ढूंढता है बाहर और जिसे पाना है वह है उसके भीतर। इसलिए जितनी खोज बढ़ती है उतना ही खोता चला जाता है। उलटा ही होता है, खोज होती है ज्यादा और पाता है कि खो गया हूं।

सिकंदर हिंदुस्तान की तरफ आता था। रास्ते में उसे एक फकीर मिला, डायोजनीज। बड़ी खबर थी उस फकीर की, बड़ा अनूठा वह आदमी था। एक छोर पर सिकंदर था, तो दूसरे छोर पर वह था। सिकंदर ने राह से चलते वक्त सोचा कि मिलता चलूं डायोजनीज को भी। बड़ी खबर सुनी है इस आदमी की। नंग-धड़ंग, नंगा ही वह रहता था। एक छोटे से टीन के पोंगरे में पड़ा रहता था। टीन का एक गोल पोंगरा था, उसे धक्के देकर किसी भी दूसरे गांव में ले जाना आसान था। वह उसमें ही सोता और उसमें ही रहता। वह दोनों तरफ से खुला था। कोई द्वार दरवाजे न थे।

सिकंदर ने खबर भेजी। खबर पहुंचाई की जाकर कह दो कि महान सिकंदर मिलने आता है। डायोजनीज अपने उस पोंगरे के बाहर सुबह की धूप लेता था, सर्दी के दिन थे। वह हंसने लगा और उसने कहाः जाओ कह देना सिकंदर को, जो खुद को महान समझता है उससे छोटा दूसरा आदमी नहीं है। वे सिपाही बोले, बड़ी भूल की बात कह रहे हो। इसका एक ही नतीजा हो सकता है कि गर्दन तुम्हारे सिर से अलग कर दी जाए।

डायोजनीज ने कहा कि जाओ और कह देना--बड़ी कठिन है यह बात; क्योंकि जिस गर्दन को मेरी कोई अलग कर सकता है उसे बहुत देर पहले ही मैं खुद ही अलग कर चुका हूं। कह दो सिकंदर से, बहुत मुश्किल है यह बात, तलवार काम नहीं कर सकेगी। क्योंकि जिस शरीर को वह समाप्त करेगा, मैं जान चुका हूं कि वह मैं नहीं हूं। खबर यह सिकंदर को कर दी गई होगी।

सिकंदर आया और उसने डायोजनीज से कहाः बहुत खुश हूं तुम्हारी बातों से, तुम्हारी हिम्मत और साहस से। तुम अकेले आदमी हो जिसने सिकंदर को जबाब दिया है, इससे मैं खुश हूं। डायोजनीज ने कहाः लेकिन मैं बहुत दुखी हूं। तुम्हें देख कर मेरे मन में बड़ी दया आती है, बहुत दुख होता है। तुम पागल हो। सिकंदर ने पूछाः क्या है मेरा पागलपन? डायोजनीज ने कहाः महीनों से देखता हूं, फौजें चली जा रहीं हैं, क्या इरादे हैं? क्या करना चाहते हो? इतने हथियार, इतने घोड़े, इतने सैनिक, यह क्या हो रहा है? कहां जा रहे हो? ये तोपें कहां जा रही हैं? सिकंदर ने कहा कि मेरा इरादा है एशिया माइनर को जीतने का। डायोजनीज ने पूछाः और उसके बाद? सिकंदर ने कहा कि उसके बाद हिंदुस्तान। और डायोजनीज ने पूछाः उसके बाद? सिकंदर ने कहाः पूरी दुनिया। और डायोजनीज ने पूछाः उसके बाद? सिकंदर ने कहाः फिर मैं विश्राम करूंगा, आनंद से विश्राम करूंगा।

डायोजनीज बोलाः बड़े पागल हो! इसलिए मैंने कहा, मैं अभी विश्राम कर रहा हूं, आ जाओ और विश्राम करो, इतनी दौड़ की क्या जरूरत है? अगर अंत में विश्राम ही करना है, तो इतनी दौड़ की क्या जरूरत है? और अगर अंत में अपने पर ही लौटना है, तो इतनी सारी दुनिया के भ्रमण करने की क्या जरूरत है? कहते हो, आखिर में अपने पर लौट आऊंगा अपने घर और विश्राम करूंगा। तो इतनी दौड़? नाहक समय खो रहे हो। इतनी देर और विश्राम कर ले सकते हो। और फिर मेरे झोपड़े में दो के लायक काफी जगह है, आ जाओ, जैसा मैं विश्राम कर रहा हूं तुम भी करो।

सिकंदर ने कहा कि बात तो तुम्हारी ठीक मालूम पड़ती है, लेकिन मैं अब आधी यात्रा पर निकल आया, अब बीच से लौटना उचित नहीं। डायोजनीज बोलाः तुम्हें पता है आज तक किसी आदमी की यात्रा पूरी नहीं हुई, हर आदमी को बीच यात्रा से लौट जाना पड़ता है। और तुम भी बीच यात्रा से लौट जाओगे, स्मरण रखना। वह क्षण नहीं आएगा जब तुम विश्राम कर सको। क्योंकि वह चित्त तुम्हारा नहीं है जो विश्राम और आनंद को जान ले। और तुम बीच में ही टूट जाओगे, समाप्त हो जाओगे। यात्रा तो नहीं होगी पूरी, तुम पूरे हो जाओगे। और यही हुआ। सिकंदर भारत से वापस लौटते वक्त घर तक नहीं पहुंच पाया, बीच में समाप्त हो गया।

फिर तो बड़ी अजीब एक और घटना घटी और वह यह कि जिस दिन सिकंदर की मृत्यु हुई संयोग की बात उसी दिन डायोजनीज की भी मृत्यु हुई। और सारे यूनान में एक कहानी प्रचलित हो गई की मरने के बाद दोनों वैतरणी पर मिल गए स्वर्ग में। जब वे वैतरणी पार करते थे, नदी पार करते थे स्वर्ग के प्रवेश के लिए तो

वहां उनका मिलना हो गया, वे एक ही दिन मरे थे। सिकंदर थोड़ी देर पहले मरा था और डायोजनीज थोड़ी देर बाद। सिकंदर आगे था, डायोजनीज पीछे था। पैरों की आवाज सुन कर और किसी की हंसने की आवाज सुन कर सिकंदर को ख्याल आया, यह हंसी तो पहचानी हुई मालूम पड़ती है, लौट कर उसने देखा, हैरान हुआ, वही फकीर था। और तब सिकंदर बहुत डर आया। उसकी कल्पना न थी कि इस आदमी से फिर मिलना हो जाएगा। उसकी घोषणा सच साबित हुई थी, यात्रा अधूरी समाप्त हो गई थी और सिकंदर ने दुनिया तो जीत ली थी लेकिन विश्राम नहीं कर पाया था। शायद डायोजनीज इसीलिए हंस रहा था। लेकिन अपनी झेंप और अपनी हीनता मिटाने को सिकंदर ने जोर से खुद भी हंसा और चिल्ला कर कहा कि बड़ी खुशी की बात है डायोजनीज, हम दोनों का फिर मिलना हो गया। एक बादशाह का एक फकीर से फिर से मिलना हो गया।

डायोजनीज और जोर से हंसने लगा और उसने कहा कि तुम ठीक ही कहते हो, एक बादशाह का एक फकीर से मिलना। लेकिन थोड़ी भूल करते हो। कि कौन बादशाह है और कौन फकीर है? बादशाह पीछे है और फकीर आगे है। मैं सब कुछ पाकर लौट रहा हूं, तुम सब कुछ खोकर लौट रहे हो, फिर कौन है बादशाह इस समय?

एक ऐसी संपदा है मनुष्य के भीतर कि उसे पाए बिना न कभी कोई पूर्ति, पूर्णता, न कोई आनंद को उपलब्ध होता है। एक ऐसा सत्य है मनुष्य के भीतर, एक ऐसा राज्य, एक ऐसा साम्राज्य, एक ऐसा सौंदर्य, एक ऐसा आनंद और आलोक कि उसे पाए बिना हर आदमी दरिद्र है, दीन-हीन है, दुखी और पीड़ित है। फिर चाहे वह बाहर की दुनिया में कुछ भी पा ले, अगर भीतर के जगत में उसने कुछ नहीं पाया तो उसकी सारी संपदा का मूल्य दो कौड़ी से ज्यादा नहीं है। और वह संपत्ति केवल प्रतीत होती है कि है। क्योंकि जो संपत्ति छिन सकती है वह संपत्ति नहीं है, केवल विपत्ति है। और जो संपत्ति नहीं छीनी जा सकती वही संपत्ति है।

क्या कोई ऐसी संपत्ति है मनुष्य के भीतर? क्या कोई ऐसा सत्य है? क्या कोई ऐसा लोक है मनुष्य की चेतना में जहां वह दुख और पीड़ा के पार हो जाए? अंधकार और अज्ञान के बाहर? जान सके मृत्यु के अतीत, जान सके उसे जो अनंत है और असीम है। है, मनुष्य के भीतर है, सबके भीतर है। लेकिन होना काफी नहीं है, उस पर आंख पड़नी चाहिए, उसका दर्शन होना चाहिए। अगर मेरे घर में खजाने भी गड़े हों और मुझे पता न हो तो मैं भिखारी की तरह भटकूंगा, रोऊंगा, गिड़गिड़ाऊंगा, दूसरों के द्वारों पर भीख मांगूंगा। मेरे घर में गड़े हुए खजाने किसी अर्थ के न होंगे। वे अर्थवान हो सकते हैं तभी जब मैं उन्हें जान लूं, पहचान लूं।

एक बहुत बड़े महानगर में एक भिक्षु मर गया था। वह जिस जमीन पर तीस वर्षों से भीख मांगता रहा बैठ कर, जहां उसने अपने गंदे चीथड़े फैला रखे थे, और तीस वर्षों की गंदगी फैला रखी थी। वह मर गया, तो पड़ोस के लोगों ने उसकी लाश को तो फिंकवा दिया। और चूंकि उस भिखारी ने तीस वर्षों तक गंदगी की थी उस जमीन पर, उन्होंने सोचा, इसे थोड़ा खोद कर जरा इसकी जमीन साफ करवा दें। वे हैरान रह गए। जहां उन्होंने खोदा वहां खजाने गड़े थे। और वह भिखारी उन्हीं के ऊपर बैठ कर जीवन भर भिक्षा का पात्र फैलाए बैठा रहा और भीख मांगता रहा।

क्या अर्थ था उस खजाने का जो नीचे गड़ा था? कोई भी नहीं। वह न होने के बराबर था। वह भिखारी और हममें बहुत भेद नहीं। जिस जमीन पर हम खड़े हैं वहीं बहुत कुछ गड़ा है। जहां हम हैं वहां बहुत कुछ है। ऐसे खजाने हैं जिन्हें पाकर आदमी परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है। ऐसा सौंदर्य है, ऐसा सत्य है, ऐसा संगीत है कि जिसमें डूब कर जीवन का अर्थ उपलब्ध हो जाता है। लेकिन उस तरफ आंख उठनी चाहिए। उसके होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। वह दिखाई पड़ना चाहिए। अगर वह दिखाई नहीं पड़ता तो हम तो भिखमंगे भीख मांगे चले जाएंगे और हम भीख मांगते हुए समाप्त भी हो सकते हैं।

लेकिन उस तरफ आंख तभी उठ सकती है जब बाहर की तरफ से आंख का धोखा टूट जाए, उसके पहले उसकी तरफ आंख नहीं उठ सकती। कौन सी चीज है जो रोके हुए है उस तरफ आंख उठने से? कौन सी बात है

जो अटकाए हुए है? एक बात, और केवल एक ही बात, और वह यह कि शायद यह आशा कि बाहर मैं कुछ पा लूं--संपत्ति, शक्ति, पद, वैभव--कुछ पा लूं बाहर तो तृप्ति हो जाएगी मेरी। यह आशा और यह भ्रम भीतर आंख नहीं उठने देता। चौबीस घंटे, चौबीस घंटे आंख अटकी रहती है कहीं बाहर। फिर यह आंख बाहर भटकते-भटकते परेशान हो जाती है, थक जाती है, बुढ़ापा आ जाता है। तो हम देखते हैं बूढ़े आदमियों को मंदिरों में जाते, संन्यासियों की बातें सुनते, शास्त्र पढ़ते। थक जाती है आंख, बाहर से ऊब जाती है, परेशान हो जाती है, तो फिर हम सोचते हैं अब धर्म की शरण, क्योंकि मौत आती है करीब और वह जीवन तो हमने गंवा दिया।

लेकिन तब भी हम बाहर ही खोजते हैं। जीवन भर की गलत आदत पीछा नहीं छोड़ती। तब भी हम किसी मंदिर में खोजते हैं जो बाहर है। और किसी गुरु के चरणों में खोजते हैं, वह भी बाहर है। और किसी शास्त्र में खोजते हैं, वह भी बाहर है। और हिमालय पर चले जाएं और संन्यासी हो जाएं, वह सब होना बाहर है। वह जीवन भर की जो गलत आदत थी बाहर खोजने की, यद्यपि यह दिखाई पड़ गया कि बाहर नहीं मिलता, लेकिन फिर भी धर्म के नाम पर भी हम बाहर ही खोजते हैं। पहला भ्रम टूट जाता है तो दूसरा भ्रम उसकी जगह खड़ा हो जाता है।

सवाल यह नहीं है कि बाहर आप धन खोजते हैं, अगर आप धर्म भी बाहर खोजते हैं तो बात वही है, कोई फर्क न हुआ। सवाल यह नहीं है कि बाहर आप शक्ति खोजते हैं, पद खोजते हैं, राज्य खोजते हैं, अगर ईश्वर को भी बाहर खोजते हैं कोई फर्क न हुआ, बात वही की वही है। जो बाहर खोजता है उसकी आंख भीतर नहीं पहुंच पाती, फिर चाहे बाहर वह कुछ भी खोजता हो। एक संन्यासी मोक्ष खोज रहा है कि मरने के बाद मोक्ष चला जाएगा, बाहर खोज रहा है। एक आदमी परमात्मा को खोज रहा है जगह-जगह, जगह-जगह, बाहर खोज रहा है। बाहर की खोज संसार है। फिर चाहे वह खोज किसी भी चीज की क्यों न हो। भीतर की खोज धर्म है। भीतर क्या खोजेंगे? भीतर का तो हमें कोई पता ही नहीं, खोजेंगे क्या? ईश्वर को खोजेंगे? धन को खोजेंगे? क्या खोजेंगे भीतर? भीतर तो अननोन है, अज्ञात है, क्या खोजेंगे? भीतर का हमें कोई पता नहीं, इसलिए हम क्या खोजेंगे?

बस एक ही बात हो सकती है, बाहर की खोज व्यर्थ दिखाई पड़ जाए तो बाहर से आंख अपने आप भीतर लौटनी शुरू हो जाएगी। जहां हमें सार्थकता दिखाई पड़ती है वहां हमारी आंख अटकी रहती है। वहीं हमारी आंख लगी रहती है जहां हमें अर्थ दिखाई पड़ता है, मीनिंग दिखाई पड़ता है। अगर वह मीनिंग दिखाई पड़ना बंद हो जाए कि वहां नहीं है अर्थ, आंख बदल जाएगी, फौरन बदल जाएगी। जहां हमें दिखाई पड़ता है कि अर्थ है वहीं हम बंधे रह जाते हैं।

एक रात एक जंगल में दो साधु निकलते थे। वृद्ध साधु, जैसे ही सांझ ढलने लगी और सूरज ढलने लगा, अपने युवा साथी से पूछा, कोई खतरा तो नहीं है इस जंगल में? कोई डर तो नहीं है? वह युवा संन्यासी हैरान हुआ। आज तक ऐसी बात उसके वृद्ध गुरु ने कभी न पूछी थी। अंधेरे से अंधेरे, बीहड़ से बीहड़, निबिड़ से निबिड़ जंगलों में से वे निकले थे, लेकिन कभी उसने न पूछा था कि कोई भय तो नहीं, कोई फियर तो नहीं, कोई डर तो नहीं। संन्यासी को डर कैसा? वह थोड़ा चिंतित हुआ। आज यह बात क्यों उठ आई है मन में? क्या हो गया है आज? कुछ गड़बड़ जरूर है। कोई फर्क जरूर है।

थोड़ी देर बाद वे एक कुएं के पास रुके हाथ-मुंह धो लेने को। सूरज ढल गया था। वृद्ध ने अपनी झोली युवा को दी और कहाः जरा सम्हाल कर रखना, मैं हाथ-मुंह धो लूं। तब उस युवक को ख्याल आया, झोली में जरूर कुछ होना चाहिए। शायद कुछ है झोली में, उसी का भय है। उसने झोली में हाथ डाला, देखा, एक सोने की ईंट। उसने उस ईंट को तो फेंक दिया जंगल के रास्ते के किनारे, उतने ही वजन का एक पत्थर झोली के भीतर रख दिया।

फिर यात्रा फिर शुरू हो गई। गुरु आ गया और उसने जल्दी से अपनी झोली ले ली और वे फिर चलने लगे। थोड़ी ही देर बाद फिर गुरु ने कहाः जंगल में कोई डर तो नहीं है? रात घनी होती जाती है। रास्ता तुम्हारा परिचित है, भटक तो न जाएंगे? जल्दी ही गांव आ जाएगा या नहीं? जल्दी ही गांव आ जाएगा या नहीं? उस युवक ने कहाः भयभीत न हों, अब कोई भय नहीं, मैं भय को पीछे फेंक आया हूं। उसने घबड़ा कर झोली में हाथ डाला, वहां तो एक पत्थर का टुकड़ा रखा था। वह वृद्ध हंसने लगा और उसने कहाः कितने आश्चर्य की बात है, मुझे ख्याल था कि सोने की ईंट ही रखी है, तो मैं सम्हाले चला जा रहा था, बार-बार टटोल कर देख लेता था। मुझे क्या पता है कि भीतर पत्थर है?

पत्थर उसने फेंक दिया और वह बोला कि अब चलने की कोई जरूरत नहीं है, अब यहीं सो जाएं। अब गांव फिर सुबह उठ कर चलेंगे। उस ईंट में अर्थ था तो मन वहां बंधा था। अब ईंट पत्थर हो गई तो रात वहीं सो गए वे। फिर कोई भय न था, फिर कोई चिंता न थी, फिर कोई विचार न था। फिर वह झोला एक तरफ पड़ा रहा और वह पत्थर भी एक तरफ पड़ा रहा।

जहां हमारा अर्थ है, चाहे उसमें अर्थ हो या न हो, जहां हमें अर्थ का बोध है, जहां हमारे चित्त को लगता है कि वहां अर्थ है, वहां हम बंधे रह जाते हैं। बाहर, बाहर जो जगत है उसमें लगता है अर्थ है, इसलिए बंधन है।

बाहर का जगत नहीं बांधता है किसी को--वह घर नहीं बांधता जिसमें आप रहते हैं, वह पत्नी और बच्चे नहीं बांधते जो आपके पास हैं। कोई नहीं बांधता आपको। आपके अर्थ का बोध बांधता है। आपको लगता है कि वहां अर्थ है, तो चित्त बंध जाता है, अटक जाता है, उलझ जाता है।

फिर कुछ नासमझ हैं कि इस बाहर के जगत को छोड़ कर भागते हैं--पत्नी को छोड़ कर, बच्चे को छोड़ कर, घर-द्वार छोड़ कर जंगल की तरफ भागते हैं। जो भागता है वह भी मानता है कि अर्थ वहां था। नहीं तो भागने का कोई कारण नहीं।

जिसके पीछे हम भागते हैं उसमें भी अर्थ है और जिससे हम भागते हैं उसमें भी अर्थ है। अगर अर्थ न हो तो उससे भागने का कोई कारण भी तो नहीं। दो तरह के लोग हैं जमीन पर। एक तो वे जो बाहर की चीजों के पीछे भागते हैं और एक वे जो बाहर की चीजों से डर कर भागते हैं। लेकिन दोनों एक बात में सहमत हैं कि बाहर की चीज में अर्थ है।

ये दोनों ही व्यक्ति धार्मिक नहीं हैं। यह गृहस्थ धार्मिक नहीं जो घर में रह रहा है और वह संन्यासी धार्मिक नहीं जो घर छोड़ कर भागता है। इन दोनों का जहां तक इस बात का संबंध है कि बाहर अर्थ है, ये दोनों सहमत और राजी हैं। यह एक ही आदमी की दो शक्लें हैं। यह एक ही आदमी के दो पहलू हैं। यह एक ही दृष्टि के दो रूप हैं। यह भिन्न दृष्टि नहीं है।

भिन्न दृष्टि तो उसकी है जिसे बाहर अर्थ दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। तो न तो वह बाहर की चीजों के पीछे भागता है और न उनसे डर कर भागता है। उसका भागना, उसका दौड़ना बंद हो जाता है। न तो वह धन के पीछे भागता है और न धन को छोड़ कर भागता है।

एक बहुत बड़े संन्यासी के पास मैं था। लोगों ने कहा, उनके सामने अगर कोई रुपये-पैसे ले जाए, तो वे आंख बंद कर लेते हैं। तो मैंने कहा कि फिर रुपये-पैसे से उनका लगाव जारी है, उनका संबंध कायम है, रुपये-पैसों पर उनकी नजर है। नहीं तो आंख बंद करने का क्या कारण है? कौन सी वजह है? अगर कोई आदमी स्त्री को देख कर आंख बंद कर लेता हो, तो समझ लें उसकी आंख स्त्री पर है। नहीं तो आंख बंद करने की क्या वजह है? भागने की क्या वजह है? डरने की क्या वजह है? कोई स्त्री से थोड़े ही डरता है, कोई स्त्री पुरुष से थोड़े ही डरती है, डरती है अपने भीतर छिपे हुए भाव से। डरता है व्यक्ति अपने भीतर छिपी हुई कामना से। वह वहां मौजूद है, इसलिए डर है, इसलिए आंख बंद करते हैं। और आंख बंद करने से वह मिटेगा जो आंख के भीतर है? आंख बंद करने से उसका क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। आंख खुली हो या बंद हो, जो भीतर है वह भीतर है।

तो हम धन के पीछे भागें कि धन छोड़ कर भागें। हम राज्य को पकड़ें या राज्य को छोड़ें। दोनों हालत में हम वहीं हैं। कोई फर्क नहीं है। संन्यास के भ्रम ने, इस बात के भ्रम ने कि जो बाहर को छोड़ कर भागता है वह धार्मिक है, जमीन पर धर्म को नहीं आने दिया। यह बात बिल्कुल ही भ्रामक है। यह वही आदमी है जो चीजों के पीछे भाग रहा था। यह वही आदमी है बिल्कुल वही जो चीजों को छोड़ कर भाग रहा है। इसके भीतर कोई भी क्रांति नहीं हो गई।

एक गांव में एक वृद्ध दंपति था। पति था और पत्नी थी। और दोनों न तो भीख मांगते और न ही कोई बड़ा व्यवसाय करते थे। लकड़ियां काट लाते थे जंगल से, बेच देते। जो पैसा आ जाता संध्या तक, जो थोड़ा रूखा-सूखा खाने को मिल जाता खा लेते और जो बच जाता वह संध्या बांट देते। रात्रि फिर दरिद्र होकर सो जाते। सुबह फिर वही लकड़ी काट लाते।

एक दिन वर्षा थी, दूसरे दिन भी वर्षा और तीसरे दिन भी। अचानक वर्षा आ गई थी। तीन-चार दिन उन्हें भूखे ही रह जाना पड़ा। और चौथे दिन जब सूरज निकला और धूप निकली तो वे जंगल गए।

चार दिन के भूखे बूढ़े कमजोर बामुश्किल उन्होंने लकड़ियां काटीं और उन लकड़ियों को काट कर उनकी मौलियां बना कर लौटे। पति आगे था, पत्नी थोड़े पीछे थी। रास्ते पर देखा उसने कि एक थैली पड़ी है। कुछ अशर्फियां बाहर पड़ी हैं सोने की, कुछ थैली के भीतर हैं। उसके मन को ख्याल आया, पति को ख्याल आया, मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया, मैंने तो धन पर विजय पा ली, मैंने तो त्याग कर दिया है पूरा, लेकिन पत्नी का क्या भरोसा?

पतियों को कभी भी पत्नियों पर कोई भरोसा नहीं है, उसको भी नहीं था। सोचा, कहीं उसका मन न डोल जाए, कहीं उसके मन में यह ख्याल न आ जाए, चार दिन की भूख, परेशानी। उठा ले, व्यर्थ पाप लगेगा उसके मन को। कमजोर होती हैं स्त्रियां, सोचा ऐसा उसने। ऐसा अपने आपको मजबूत सोचने के लिए सुविधा होती है दूसरे को कमजोर सोच लेना।

तो उसने जल्दी से उस अशर्फी और थैली को गड्ढे में सरका कर मिट्टी डाल दी। पीछे उसकी पत्नी भी आ गई जब वह मिट्टी डाल ही रहा था, उसकी पत्नी ने पूछा क्या करते हैं? सत्य बोलने का नियम था उसका, मुश्किल में पड़ गया।

जो भी नियम ले लेते हैं सत्य बोलने का वे मुश्किल में पड़ ही जाते हैं। क्योंकि सत्य सहज निकले वह बात दूसरी है और नियम से निकले वह बात बिल्कुल दूसरी है। तो कठिनाई खड़ी हो गई। सच बोलता है, तो जो बात छिपानी चाही थी वह जाहिर होती, झूठ बोल नहीं सकता। इसलिए मजबूरी में उसे कहना ही पड़ा कि मुझे क्षमा करो, अपने मन में कोई वासना मत लाना। बहुत बहुमूल्य अशर्फियों वाली थैली यहां पड़ी थी, सोने की अशर्फियां थीं। मैंने सोचा, मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली, लेकिन तुम्हारा मन कहीं डोल न जाए। इसलिए मैंने उन्हें हटा कर मिट्टी से ढंक दिया, ताकि तुम देख न पाओ। वह पत्नी हंसने लगी और उसने कहाः तुम्हें सोना अभी दिखाई पड़ता है? और तुम्हें मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म भी नहीं आती?

यह जो पति है, यह वही का वही है, इसने सोना छोड़ा है लेकिन सोने से इसका अर्थ नहीं गया। इसे अभी सोना मिट्टी नहीं हुआ। सोना ही है छोड़ा है इसने, लेकिन छोड़ने से सोना मिट्टी थोड़े ही हो जाता है। जानने से, छोड़ने से नहीं। जागने से, छोड़ने से नहीं। बोध के जगने से सोना जरूर मिट्टी हो जाता है। और सोना मिट्टी हो जाए तो न तो उसे पकड़ने की दौड़ रह जाती है और न छोड़ने की। सोना अपनी जगह रह जाता है, हम अपनी जगह रह जाते हैं। उससे हमारा नाता टूट जाता है।

गृहस्थी का भी नाता है, संन्यासी का भी नाता है, रिलेशनशिप है। वह चाहे पकड़ने की हो, चाहे छा.ेडने की हो। धार्मिक आदमी वह है बाहर के जगत से जिसका अर्थ विलीन हो गया, रिलेशनशिप टूट गई, संबंध टूट गया। यह तो बोध, अवेयरनेस, बाहर से हम इतना अपने को भरते हैं फिर भी भर नहीं पाते, तो कहीं

कोई भूल तो नहीं है? कहीं कुछ ऐसा तो नहीं है कि बाहर हम कुछ भी इकट्ठा करने में समर्थ हो जाएं भीतर हम खाली ही बने रहेंगे।

सच है, सीधी गणित की बात है, जो बाहर है वह भीतर को कैसे भर सकेगा? जो बाहर है वह भीतर आ कैसे सकेगा? खालीपन है भीतर, एंप्टीनेस है भीतर। और जो भी हम जोड़ लेंगे वह होगा बाहर। भीतर और बाहर का मेल कहां होता है। जोड़ेंगे वह रह जाएगा बाहर, भीतर उसे कैसे ले जाइएगा?

जो भी बाहर है वह भीतर न जा सकेगा। वह डाइमेन्शन अलग है, वह आयाम अलग है। जो बाहर है वह भीतर नहीं जा सकेगा। बाहर का बाहर रह जाएगा। भीतर हम खाली के खाली रह जाएंगे। और उसी भीतर के खालीपन को भरने के लिए दौड़े थे, इकट्ठा किया था यह सब। इस इकट्ठा करने में जीवन तो व्यतीत होगा लेकिन उपलब्धि नहीं होती है, नहीं हो सकती है।

भीतर को भरने का उपाय बाहर नहीं है, इस बोध का नाम धर्म है। इस समझ, इस अंडरस्टेंडिंग का नाम धर्म है। न तो गीता पढ़ लेने का नाम, और न बाइबिल पढ़ लेने का नाम, और न टीका लगा लेने का नाम, और न मंदिर चले जाने का नाम, और न इस तरह के वस्त्र या उस तरह के वस्त्र पहन लेने का नाम धर्म है। यह सब धोखे की बातें हैं, जिनमें हम धार्मिक होने का मजा ले लेते हैं बिना धार्मिक हुए।

सस्ते उपाय हमने खोज लिए हैं धार्मिक होने के भी। सस्ते, दो-दो पैसे के उपाय। एक आदमी चार पैसे की माला खरीद लाए और उस पर अंगुलियां फिराता रहे, तो वह धार्मिक हो जाता है। इस भांति सेल्फ-डिसेप्शन, खुद को हम धोखा दे लेते हैं, धार्मिक हो गए हैं। धार्मिक होना एक आमूल-क्रांति है। और वह क्रांति इस बात से संबंधित है कि बाहर के जीवन में अर्थ नहीं है यह दिखाई पड़ जाए। यह कैसे दिखाई पड़ेगा? किस मार्ग से यह दिखाई पड़ जाएगा कि बाहर के जीवन में अर्थ नहीं है? ऑब्जर्वेशन से, निरीक्षण से। बाहर के जीवन को और स्वयं को थोड़ा निरीक्षण करें, थोड़ा देखें। निंदा न करें। निंदा न करें कि बाहर का जीवन पाप है और बुरा है, छोड़ना है इसे। जो निंदा करता है उसे अर्थ दिखाई पड़ रहा है। निंदा न करें। कंडेमनेशन का कोई मतलब नहीं है।

बाहर की दुनिया की निंदा न करें कि यह पाप है और बुरा है। पाप और बुरा है तो भी अर्थ मौजूद है। नहीं, बाहर के जीवन को बहुत निर्दोष चित्त से देखें। बहुत इनोसेंट आब्जर्वेशन चाहिए। देखें आंख खोल कर यह बाहर की जिंदगी है, क्या है यह? और इतना मैं दौडूं और इतना इकट्ठा कर लूं, क्या होगा? क्या हो रहा है दूसरों को?

अमरीका का एक अरबपति कारनेगी मरा। तो उसके पास चार अरब रुपये थे मरते वक्त। लेकिन बहुत उदास और दुखी था। उसकी जीवन-कथा लिखने वाले लेखक ने उससे पूछा, आप तो तृप्त होंगे, अपने ही जीवन में अकेले अपने श्रम से चार अरब रुपये आपने खड़े किए। कारनेगी ने कहाः तृप्त? मेरे इरादे दस अरब रुपये इकट्ठे करने के थे। मैं एक असफल आदमी हूं।

क्या आप सोचते हैं कारनेगी को दस अरब रुपये मिल जाते तो सफल आदमी हो जाता? हम जानते हैं जिनको दस अरब मिलते हैं वे भी सफल नहीं मानते अपने को, क्योंकि यदि वे सफल मान लें तो आगे की दौड़ बंद कर दें। लेकिन नहीं, दस अरब के बाद भी दौड़ जारी रहती है। सफलता नहीं आई, नहीं तो दौड़ बंद हो जाती। सफलता आती तो दौड़ रुक जाती। कभी किसी की दौड़ रुकते देखी है? दस अरब मिल जाते कारनेगी को, तो उसे पता भी नहीं चलता कि उसके सपने सौ अरब के कब हो गए? चुपचाप अंधेरे में सपने आगे बढ़ जाते हैं।

जितना हम पा लेते हैं उससे बहुत आगे हमारे सपने खड़े हो जाते हैं आकाश के क्षितिज की भांति, हॉरिजन की भांति दिखता है कि जमीन को छू रहा है। यहीं पास, यहीं सूरत के बाहर जमीन को छू रहा है

आकाश चारों तरफ से, बढ़ें, बढ़ें थोड़ा, तो पाएंगे वह आकाश भी हटता चला जा रहा है। सूरत बहुत पीछे छूट जाएगा और आकाश को जमीन छूने की जो रेखा है वह उतनी ही दूर रहेगी जितनी तब थी, जब हम नहीं चले थे। कितना ही चल लें वह उतनी ही दूर रहेगी। असल में आकाश जमीन को कहीं छूता ही नहीं, नहीं तो फासला पूरा हो सकता था। चित्त की जो क्षितिज रेखा है आकांक्षा की, आशा की, वह भी कहीं पूर्ति को छूती नहीं। नहीं तो पूरी हो सकती थी।

बच्चों की एक छोटी कथा है। अलाइस नाम की लड़की परियों के देश में पहुंच गई थी। जब वह परियों के देश में पहुंची, जमीन से चलते-चलते बहुत थक गई थी। आकाश में पहुंच गई, तो बहुत थकी हुई थी। जमीन से चलना, छोटी बच्ची, भूख-प्यास लग आई थी उसे। वहां जाकर उसने देखा, शीतल ठंडी हवाएं बहती हैं, बड़ी सुंदर जगह है, पर भूख उसे जोर से लगी है। और चारों तरफ आंखें दौड़ाईं, देखा, थोड़ी ही दूर पर, थोड़ी ही दूर पर, जरा से फासले पर, सौ कदमों की दूरी पर परियों की रानी खड़ी है। उसके हाथ में फलों के, मिठाइयों के थाल हैं। और वह रानी उसे बुला रही है कि अलाइस आ, उसे इशारा कर रही है।

अलाइस ने दौड़ना शुरू किया। सुबह थी, तब सूरज निकल रहा था। वह भागी, सौ ही कदम का फासला था, दो क्षण का फासला था, लेकिन भागी। भागी, सूरज ऊपर चढ़ने लगा और वह घबड़ा गई। वह भागती जा रही है, रुक कर देखती जाती है, फासला उतना ही है, डिस्टेंस उतना ही है। वह रानी अब भी खड़ी है दरख्त के नीचे, हाथ में उसके फलों के थाल हैं और वह इशारा करती है कि आओ, उसकी आवाज सुनाई पड़ती है कि आ जाओ अलाइस। वह फिर भागती है। सूरज ऊपर आ गया, धूप कड़ी हो गई। वह थक गई, पसीने से भर गई। उसने रुक कर खड़े होकर चिल्ला कर पूछा, यह क्या मामला है? सुबह से दोपहर हो गई दौड़ते-दौड़ते, फासला छोटा मालूम पड़ता है, लेकिन मैं दौड़ती चली जा रही हूं और तुम उतनी ही दूर हो जितनी दूर थीं?

उस रानी ने कहाः यह मत सोचो, जो सोचते हैं वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। दा.ैडो, सोचने वाला मुश्किल में पड़ जाता है। उसने कहाः दौड़ो। दौड़ने वाला पहुंचता है, सोचने वाला मुश्किल में पड़ जाता है। उसको भूख लगी थी। वह फिर दौड़ने लगी। सूरज ढलने को आ गया, सांझ हो गई, वह अलाइस थक कर गिर पड़ी। फासला उतना का उतना था। उसने चिल्ला कर पूछाः रानी, यह कैसी दुनिया है तुम्हारी? सुबह से सांझ हो गई मेरे दौड़ते-दौड़ते, यह रास्ता कहीं ले जाता नहीं, तुम तक पहुंचाता नहीं, फासला उतना है और अब तो अंधेरा भी उतरने लगा। उस रानी ने कहाः पागल लड़की, तुझे शायद पता नहीं, दुनिया में कोई रास्ता किसी को कहीं नहीं पहुंचाता।

सुबह जन्म के सूरज के साथ आदमी जहां अपने को पाता है मृत्यु की संध्या वहीं पाता है, फासले उतने ही रहते हैं। फासले उतने ही रहेंगे। दौड़ने से पूरे नहीं होते। इसका आब्जर्वेशन चाहिए, इसका निरीक्षण चाहिए कि हम आंख खोल कर चारों तरफ देखें। आंख खोल कर जो देखेगा वह आदमी धार्मिक हुए बिना नहीं रह सकता। लेकिन जिनको हम धार्मिक जानते हैं वे तो आंख बंद करके बैठ जाते हैं।

आंख बंद करने में धर्म नहीं, आंख ठीक से पूरी खोलने में धर्म है। आंख बंद करना एक तरह की मौत है। आंख बंद करना एक तरह की सुसाइड है, आत्महत्या है। क्योंकि जो आंख बंद करता है वह तथ्यों के जगत से टूट जाता है। और उन्हीं तथ्यों के निरीक्षण में छिपा है सत्य। उसी में जो सब तरफ फैला है, उसी में देखना है ठीक से। उसमें हम ठीक से नहीं देख पाते, इसलिए अर्थ मालूम होता है। ठीक से देख पाएं, अर्थ विलीन हो जाता है।

तो राइट ऑब्जर्वेशन चाहिए, सम्यक दृष्टि, ठीक-ठीक आंख चाहिए देखने वाली। ठीक आंख का पहला लक्षण हैः निष्पक्ष, अनप्रिज्युडिस्ड। पहलाः बिना किसी पक्ष के। दूसरा लक्षण हैः सरलता से, सहजता से जो तथ्य है उसको देखना। सिद्धांतों के माध्यम से जो तथ्य को देखता है वह तथ्यों को कभी नहीं देख पाता और जो तथ्यों को नहीं देख पाता, फैक्ट्स को नहीं देख पाता, उसकी आंखें कभी भ्रम से मुक्त नहीं हो पाती हैं।

एक युवक अपने गुरुकुल से वापस लौटा। जब वह गुरु से विदा होता था, उसने गुरु के पैर पड़े और उसकी आंखों से आंसू गिर पड़े गुरु के चरणों पर। गुरु ने कहाः रोते हो, क्या बात है? उसने कहाः रोऊं न तो क्या करूं? मेरे सारे मित्र आज विदाई के क्षण में कुछ न कुछ भेंट करते हैं आपको, मेरे पास लेकिन सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं, तो मैं रोता हूं और एक वचन चाहता हूं कि जब मेरे पास कुछ हो तो उसे स्वीकार कर लेना। बाद में कभी जब मैं आऊं तो मुझे इंकार न हो, इसका वचन दें, तो ही मैं जाऊंगा। मैं हूं बहुत दरिद्र, मां और पिता भी मेरे नहीं हैं। आपने ही मुझे शिक्षा दी और भोजन भी दिया और वस्त्र भी दिए और आश्रय भी। मेरे पास कुछ भी नहीं है देने को, सब कुछ आपका ही है जो मैं हूं, तो किसी दिन अगर मैं कुछ ले आऊं तो वह स्वीकृत होगा, यह वचन दे दें।

गुरु ने बहुत कहाः आंसुओं से बड़ी और कोई भेंट नहीं और प्रेम से बड़ा कोई सम्मान नहीं। लेकिन फिर भी तू नहीं मानता तो तेरी मर्जी, मेरे द्वार तेरे लिए हर चीज के लिए खुले हैं, तू कभी भी आ।

वह युवक वहां से चला देश की राजधानी में पहुंचा। उसी संध्या अपने एक मित्र के घर मेहमान हुआ। रात उसे करवटें बदलते देख कर उसके मित्र ने पूछाः बेचैन मालूम होते हो बहुत, क्या बात है? उसने कहाः बेचैनी एक ही है। जिस गुरु के पास बहुत कुछ पाया उसे मैं भेंट भी न कर सका कुछ भी, भेंट न कर सका। उसके मित्र ने पूछाः क्या भेंट करना चाहते हो? उस युवक ने कहा कि अगर पांच स्वर्ण-मुद्राएं भी मुझे मिल जाएं... लेकिन कहां मिलेंगी? मैंने तो इकट्ठी पांच मुद्राएं देखी भी नहीं। तो मैं गुरु के चरणों में रख आता। उसके मित्र ने कहाः तुम निश्चिंत सो जाओ, सुबह थोड़े जल्दी उठ आना, इस देश का जो राजा है उसका नियम है कि पहले भिक्षु, पहला याचक उसके द्वार पर जो चला जाता है वह जो भी मांग लेता है वह दे देता है। तुम पांच स्वर्णमुद्राएं मांग लेना। जल्दी चले जाना। और घबड़ाने की कोई बात नहीं है, मुश्किल से कभी कोई याचक जाता होगा।

वह निश्चिंतता से सो गया और सुबह बहुत जल्दी राजा के द्वार पर पहुंच गया। कोई वहां न था। थोड़ी देर बाद राजा अपनी बगिया में घूमने को आया। तो वह हाथ जोड़ कर उसने कहा कि मैं पहला याचक हूं जो मैं मांगूंगा दे सकेंगे आप? राजा ने कहाः आज के ही नहीं, सदा के तुम पहले याचक हो, क्योंकि आज तक जब से मैंने यह नियम लिया, कोई नहीं आया। तो जो तुम मांगोगे मैं दे दूंगा। जो तुम मांगोगे।

जैसे ही राजा ने यह कहा, जो तुम मांगोगे! पांच स्वर्ण अशर्फियों का ख्याल एकदम खिसक गया और पांच हजार अशर्फियों का ख्याल आ गया। गणित सीखा था उसने भी। आप थोड़े ही गणित जानते हैं, मैं ही थोड़े ही, वह भी गणित जानता था। पांच हट गए और शून्य पर शून्य लग गए--पांच हजार। उसने सोचा, जब राजा कहता है, जो मांगोगे, तो पागल हूं जो मैं पांच मागूं, पांच हजार क्यों नहीं? और फिर उसे लगा पागल हूं जो मैं पांच हजार ही मागूं, पांच लाख क्यों नहीं? या कि पांच करोड़, या कि पांच अरब, या कि खरब। और फिर बहुत ही शीघ्र क्षणों में संख्याएं लंबी हो गईं। और अंतिम संख्या आ गई जो उसे मालूम थी। और तब उसका हृदय धक से रह गया कि मैंने और गणित क्यों न सीख लिया?

राजा सामने ही खड़ा था, उसने कहाः प्रतीत होता है तुम निश्चय करके नहीं आए। तो तुम निश्चय कर लो, मैं बगिया का एक चक्कर लगा आऊं। युवक को राहत मिली, उसने कहाः बड़ी कृपा है आपकी। मैं थोड़ा सोच लूं। लेकिन सोचने की तो अंतिम सीमा आ गई थी, संख्याएं चुक गईं थीं। क्या सोचे? क्या करे? और बहुत पीड़ा मालूम होने लगी। राजा के पदचाप सुनाई पड़ने लगे। वह वापस लौटता है। उसके पदचाप बढ़ते चले जाते हैं और वह घबड़ाया जा रहा है और मरा जा रहा है।

पांच स्वर्ण-अशर्फियां बहुत पहले छूट गईं। गुरु न मालूम कहां खो गया। देने-लेने की बात न रही। भेंट का कोई सवाल न था। सवाल था, एक राजा कहता है, जो मांगोगे दे दूंगा। तो पीड़ा मन को सताने लगी। इस बात की खुशी नहीं की बहुत कुछ मिल जाएगा, इस बात का दुख कि पता नहीं कितना पीछे छूट जाएगा। मांग तो

लूंगा यह लेकिन पता नहीं कितना पीछे छूट जाएगा। और यह अवसर जीवन में दुबारा आए न आए। और डर है कि न आएगा। क्योंकि राजा इस भेंट को देकर सचेत हो जाएगा। और शायद वापस ले-ले अपने नियम को। सोचा होगा एक गरीब सा लड़का है दस पचास रुपये मांगेगा, कोई स्कॉलरशिप की बात कहेगा या कुछ और। राजा करीब आने लगा तभी उसके सारे प्राण जैसे इकट्ठे हो गए और उसे ख्याल आया मैं गलती में हूं संख्या छोड़ दूं, मैं सीधा मांग लूं कि जो कुछ तुम्हारे पास है सब मुझे दे दो। संख्या की उलझन गड़बड़ है। पीछे पछतावा होगा। सब दे दो जो तुम्हारे पास है। हां, दो वस्त्र छोड़ दूं, जो वह पहने है पहने चला जाए।

बाहर निकल जाओ दो वस्त्र पहने हुए। दया है मेरी कि दो वस्त्र छोड़ता हूं। ऐसे मन तो छोड़ने का नहीं होता। दो वस्त्र भी कौन छोड़ना चाहता है? राजा सामने आया तो वह निर्णीत था। उसने कहाः फिर से कह दें कि जो मैं मांगूंगा देंगे। राजा ने कहाः कहा मैंने, तुम चिंता क्यों करते हो। बोलो? उस युवक ने कहाः तब जो आप वस्त्र पहने हो उन्हें पहने बाहर निकल जाएं, और जो आपका है सब मेरा हुआ।

सोचा था राजा घबड़ा आएगा। पता नहीं हृदय का दौरा आ जाए, हार्ट अटेक हो जाए, या क्या हो जाए, लेकिन राजा घबड़ाया नहीं। बात उलटी हो गई। घबड़ाया युवक ही। क्योंकि राजा ने आकाश की तरफ हाथ जोड़े और कहा कि हे परमात्मा! जिस आदमी की मैं प्रतीक्षा करता था वह आ गया। और राजा ने कहाः मेरे बेटे, दो वस्त्र छोड़ने में तुझे बहुत कष्ट होगा, वह भी मैं छोड़े जाता हूं, मैं नग्न ही इस द्वार के बाहर निकल जाता हूं, जिसमें कि कभी तुझे पछतावा न हो और मेरे प्रति क्रोध न आए।

छोड़ना बहुत कठिन होता है। राजा ने कहाः दो वस्त्र भी छोड़ना बहुत कठिन होता है। और तेरी उम्र में बहुत कठिन है। वस्त्र उतारने लगा राजा। युवक बोलाः ठहरो। एक चक्कर और बगीचे का लगा आएं, मैं एक बार और सोच लूं। क्योंकि मैं घबड़ा आया हूं। मैं अबोध हूं, मेरा कोई अनुभव नहीं है। और आपकी छोड़ने की इतनी राजी, इतनी मर्जी, इतनी स्वेच्छा, इतना आनंद, तो मैं डर गया। क्योंकि जो इतना बड़ा राज्य इतनी खुशी से छोड़ कर भगवान को धन्यवाद देकर जाता है, निश्चित ही इस सबमें उसने कुछ भी न पाया होगा। जब वह अपने जीवन को व्यर्थ कर लिया आपने और आप बूढ़े हो आए और आपके सारे केश शुभ्र हो गए और आपके चेहरे पर झुर्रियां आ गईं और जीवन आपसे विदा हो गया, और आप इस सबके बीच कुछ न पा सके, तो क्षमा करें, अभी मेरे पास जीवन है, मैं वहां खोजूं जहां कुछ मिल सकता है। क्षमा करें, एक दफा और घूम आएं, मैं सोच लूं। राजा ने कहाः सोचोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। सोचने वाले हमेशा मुश्किल में पड़ जाते हैं। और फिर जीवन पड़ा है सोचते रहना। मैंने भी तो जीवन भर सोचा तब जाना। रुको, जल्दी क्या है। जल्दी हो तो मुझे होनी चाहिए, सम्हालो इसे जल्दी, मैं जाऊं।

लेकिन युवक राजी नहीं हुआ और राजा को दूसरा चक्कर लगाने जाना पड़ा। और जैसा कि राजा को ज्ञात था वही हुआ। लौट कर युवक वहां नहीं था। वह अपनी पांच स्वर्ण-मुद्राएं भी बेचारा छोड़ गया।

इसे मैं कहता हूंः ऑब्जर्वेशन। इसे मैं कहता हूंः निरीक्षण। उस युवक ने कुछ देखा, निरीक्षण किया। उसके पास आंख थी। वह राजा के आर-पार देख गया। राजा की सारी संपत्ति के आर-पार देख गया। उसे दिखाई पड़ गया।

एक आदमी के लिए जो व्यर्थ हो गया वह हरेक के लिए व्यर्थ है। आदमी और आदमी में भेद नहीं। मन और मन में अंतर नहीं। और एक आदमी सब आदमी की कथा है। लेकिन हम सब इस भ्रम में होते हैं कि मैं हूं एक्सेप्शन, मैं हूं अपवाद। मैं बात ही और हूं, बाकी सब और होंगे। इसलिए हर आदमी यह सोच कर मैं अपवाद हूं, सोचता है निरीक्षण करने की क्या जरूरत है। मैं जीऊं अपने ढंग से। नहीं, कोई मनुष्य अपवाद नहीं है। मनुष्य की कथा एक है। मनुष्य के चित्त की कथा अलग-अलग नहीं। और उसके चित्त के नियम एक हैं, भिन्न नहीं। दस हजार वर्षों में अगर कोई अनुभव मनुष्य के सामने निरपवाद रूप से खड़ा हो गया है तो वह यह कि जिन्होंने बाहर खोजा उन्होंने कुछ भी नहीं पाया। एक भी बार खोजने वाला आदमी यह नहीं कह सका कि मैं हाथ उठा कर कहता हूं कि मैंने बाहर की दुनिया में पा लिया उसे जिसे मैं पाना चाहता था। पूरे मनुष्य के इतिहास में एक आदमी नहीं जो यह कह सके कि मैंने बाहर खोजा और पा लिया। और दूसरी बात भी इतनी ही

निरपवाद सत्य है जिसने भीतर खोजा उनमें से भी एक भी आदमी ऐसा नहीं जिसने कहा हो मैंने भीतर खोजा और नहीं पाया।

अगर किसी चीज को साइंटीफिक ट्रूथ कहा जा सके, किसी चीज को वैज्ञानिक सत्य कहा जा सके, तो वह यह है। क्योंकि इसका कोई एक्सेप्शन नहीं है, कोई अपवाद नहीं है। यह युनिवर्सल है, यह सार्वलौकिक है। यह सर्वलोक में सर्व मनुष्य के इतिहास में प्रमाणित है कि बाहर नहीं कोई अर्थ पाया जा सका।

करोड़-करोड़ अरब आदमी दौड़े और समाप्त हो गए। हम उनकी लाशों पर खड़े हैं। लेकिन हम नीचे झुक कर नहीं देखते कि हमारे पैर में किनकी धूल है, किनकी लाशें हैं।

थोड़े से लोगों ने भीतर भी खोजा है और पाया है। वे थोड़े से लोग ही सुगंध की तरह, प्रकाश की तरह, वे थोड़े से लोग ही उस सुवास की तरह हैं, उस संगीत की तरह जो कभी-कभी हमारे कानों में पड़ जाता है और कोई याद जगा देता है, खोई स्मृति और एक ख्याल और एक धुन पैदा हो जाती है। हम भी खोजें।

क्या ऐसा नहीं हो सकेगा कि कभी पूरा मनुष्य का समाज इस सत्य को खोजने में समर्थ हो जाए? क्या ऐसा कभी नहीं हो सकेगा कि मनुष्य इस पृथ्वी पर बहुत बड़ी संख्या में भीतर जो छिपा है उसे जान ले?

ऐसा हो सकेगा। क्योंकि अगर एक मनुष्य के जीवन में भी ऐसा हो सका है, तो फिर मान लें, समझ लें, इस बात को पहचान लें इस बात को कि जो एक मनुष्य के जीवन में भी हो सका है, अगर एक बुद्ध या एक महावीर या एक कृष्ण, एक क्राइस्ट के जीवन में अगर कोई आनंद की किरण फूटी है और जीवन आलोकित हो उठा है तो हर मनुष्य हो गया हकदार उसको पाने का। क्योंकि बीज अगर एक अंकुर ले आता है तो सभी बीज अंकुर ले आएंगे। अगर एक मनुष्य के भीतर ऐसी परमात्मा की सुगंध उठ आती है तो हर मनुष्य की संभावना हो गई, यह पोटेंशिएलिटी हो गई, उसके भीतर भी यह संभावना प्रकट हो सकती है। हो सकता है किसी दिन जमीन पर ऐसा दिन ऐसा लोक कि बहुत अधिक लोगों के जीवन संगीत और प्रेम और प्रकाश से भर जाएं।

धर्म के द्वारा यह होगा। धर्मों के द्वारा नहीं। रिलीजंस के द्वारा नहीं, रिलीजन के द्वारा। धर्म के द्वारा, धर्मों के द्वारा नहीं। और यह भीड़ धर्मों की तो बाधा बनी है, यह विदा हो जानी चाहिए।

हिंदू, मुसलमान, ईसाई और जैन बड़ी अग्लिनेस के सबूत हैं, बड़ी कुरूपताओं के। मनुष्य को तोड़ने की दीवालें ये ही हैं। मनुष्य मनुष्य के बीच के फासले ये ही हैं। और जो चीज एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से अलग कर देती हो, क्या आप सोच सकते हैं वह मनुष्य को परमात्मा से जोड़ सकेगी? जो मनुष्य को मनुष्य से ही अलग कर देती हो वह मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ सकेगी?

जो तोड़ने वाला है वह धर्म नहीं है। लेकिन जो जोड़ दे प्राणों को प्राण से, एक को सबसे। और वह जोड़ तभी पैदा होता है जब आंख भीतर जाती है। जोड़ पैदा नहीं होता बल्कि आंख भीतर जाते ही पता चलता है कि हम तो जुड़े हैं, संयुक्त हैं, इकट्ठे हैं। एक ही प्राण एक ही चेतना बहुत बहुत रूपों में प्रकट और अभिव्यक्त है। और जैसे ही आंख भीतर जाती है ज्ञात होता है कि न कोई दुख हैः दुख था इसलिए की हम बाहर थे बाहर होना ही दुख था। न कोई चिंता है, न कोई पीड़ा और न है मृत्यु। बाहर हम थे इसलिए उसे नहीं देख पाते थे जो भीतर है और अमृत है।

इस छोटी सी चर्चा में मैंने एक ही बात आपसे कही, एक ही छोटा सा सूत्र, देखें आंख खोल कर जीवन को, निरीक्षण करें, तो बाहर की व्यर्थता दिखाई पड़ सकती है। और बाहर की व्यर्थता दिखाई पड़ आए तो भीतर की सार्थकता पर तत्क्षण आंख पहुंच जाती है। और जिसकी भीतर की सार्थकता पर आंख पहुंच गई वह कोई बाहर की दुनिया को वह जानने वाला नहीं बन जाता है बल्कि वही बाहर की दुनिया के लिए भी आनंद का और सुवास का स्रोत हो जाता है। वह कोई बाहर की दुनिया को मिटाने वाला और वह उजाड़ने वाला नहीं होता, बल्कि वही आधार बन जाता है बाहर की दुनिया के लिए भी।

क्योंकि जब भीतर सुगंध पैदा होती है, तो सुगंध बाहर फैलनी शुरू हो जाती है। और जब भीतर आनंद पैदा होता है, तो आनंद बाहर बंटना शुरू हो जाता है। और जब भीतर प्रकाश का जन्म होता है, तो उसकी किरणें बाहर पहुंचनी शुरू हो जाती हैं। जो भीतर है फिर वह बाहर बंटने लगता है।

इसलिए जो स्वयं को जानता है और जो धर्म में जीता है वह संसार को उजाड़ता नहीं बल्कि उसके लिए तो सारा संसार ही परमात्मा हो जाता है।

अंत में यही प्रार्थना करूंगा, परमात्मा करे आपके भीतर से सुगंध और सत्य और संगीत पैदा हो सके। वह मौजूद है, आपकी आंख वहां पहुंच जाए, तो वह जाग जाएगा, उठ आएगा और प्रकट हो जाएगा।

बीज मौजूद हैं, अगर आपकी आंख उन बीजों पर पड़ गई तो वे अंकुरित हो जाएंगे और उनमें फूल आ जाएंगे। और जब किसी आदमी के जीवन में फूल आते हैं तो वह पूर्णता को उपलब्ध हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।